डॉ. धर्मवीर भारती
का
रचना संसार

डॉ. रामसुख व्यास

जिनके ऋण से कभी
उऋण नहीं हो सकता
उन पूज्य पाद पिता श्री
किशन लाल जी व्यास एवं
माताजी दुर्गा देवी के
चरणों में ।

प्रकाशक : चयन प्रकाशन
हनुमान हत्था,
बीकानेर
आवरण : सन्नू हर्ष
प्रथम संस्करण : 1985
मूल्य : 45 रु० मात्र
मुद्रक : न्यू भारत प्रिन्टर्स
शाहदरा, नई दिल्ली

Dr, Dharmveer Bharti Ka Rachana Sansar
By
Dr. Ram Sukh Vyas 45.-

अपनी ओर से......

आधुनिक हिन्दी काव्य के सशक्त हस्ताक्षर डॉ भारती के काव्य को विभिन्न आयामों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हुए पौराणिक प्रसंग को नवीन संदर्भों में देखने का प्रयास किया है। भारती के प्रबन्ध काव्यों का मूल्यांकन एवं विश्लेषण मेरे द्वारा किया गया है। डॉ० भारती की काव्य सर्जना उनके व्यक्तित्व का जीवन्त प्रतिरुप है। भारती जी ने यद्यपि कहानी, उपन्यास, एकांकी, निबन्ध, नाटक और अनुवाद आदि विविध साहित्यिक विधाओं पर लिखकर अपनी सर्जनात्मक मेधा का प्रभूत परिचय दिया है तथापि उनकी प्रतिभा का उत्तमांश काव्य-सृजन में ही प्रतिफलित हुआ है। समष्टि रूप से यह कह देना भी चाहता हूं कि डॉ. भारती के कव्य कृतियां कलात्मक सौन्दर्य और भावबोध दोनों ही पक्षों से सफल संरचना है इनके काव्य को ज्यों ज्यों विश्लेपित करते जायें त्यों त्यों रचनात्मकता का सौन्दर्य प्रकट होता जाता है। इस पुस्तक में अनेक ऐसी विशेषताएँ प्रकाशित की गई है जिन्हें प्रथम बार ही प्रकाश मिला है।

इस पुस्तक को हिन्दी साहित्य के आलोचना जगत में लाने का विचार लम्बे समय से मस्तिष्क में घर किये हुए था परन्तु स्वयं की लापरवाही के कारण यह पुष्प नहीं खिल सका अब आपके हाथों तक पहुँचाने में सफल रहा हूँ जिसका तमाम श्रेय अग्रज श्री नरसिंह व्यास, शिवरतन व्यास तथा अनुज दिनेश व्यास को जाता है जिनकी प्रेरणा व सहयोग का यह प्रतिफल है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रंथ का हिन्दी साहित्य में समुचित आदर होगा।

रामसुख व्यास

अनुक्रम

धर्मवीर भारती का कृतित्व और 'कनुप्रिया'

धर्मवीर भारती : व्यक्तित्व विश्लेषण

धर्मवीर भारती का जन्म २५ दिसम्बर, १९२६ ई० को कायस्थ घराने में इलाहाबाद में हुआ था। भारतीजी ने अपनी शिक्षा इलाहाबाद में ही प्राप्त की।[1] इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वहीं से इन्होंने सन् १९४७ में प्रथम श्रेणी में एम० ए० "हिन्दी" की उपाधि प्राप्त की और विश्वविद्यालय के सर्वाधिक अध्ययनशील छात्र होने के उपलक्ष में इन्हे "चिन्तामणि घोष स्वर्ण" पदक प्रदान किया गया। श्री भारती ने डा० धीरेन्द्र वर्मा के सुयोग निर्देशन में 'सिद्ध साहित्य" जैसे दुसाध्य विषय पर शोध कार्य किया और पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। 'धर्मवीर भारती के पूज्य पिताजी का स्वर्गवास शीघ्र हो जाने के कारण उन्हे अपने मामाजी का संरक्षण प्राप्त हुआ जिनका प्रोत्साहन अमूल्य वरदान सिद्ध हुआ। जीवन संघर्ष बहुत तीखा रहा और अब भी है पर उसने एक विचित्र सी दृढ़ता और मस्ती दे दी है।[2] धर्मवीर भारती डी० फिल० की उपाधि धारण कर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से जुड़ गये लेकिन शुरू से ही इनका झुकाव पत्रकारिता की ओर रहा।[3]

धर्मवीर भारती ने व्यक्तित्व के धनी एवं अध्ययनशील होने के नाते-

१- नयी कविता : उद्भव और विकास – रामवचन राय, पृ० १३८

२- दूसरा सप्तक पृ० १७५

३- नयी कविता : नये कवि – विश्वम्भर मानव, पृ० २७१

'लिखना बी० ए० से शुरू किया और छापना तो बहुत देरी से शुरू हुआ ।[1] भारती जी को दो चीजों की बहुत प्यास रहती है— एक तो नयी-नयी किताबों की और दूसरी अज्ञात दिशाओं को जाती हुई लम्बी निर्जन छायादार सड़कों की। सुविधा मिले तो सारी जिन्दगी धरती पर परिक्रमा देता जाऊं । मुक्त हंसी, ताजे फूल और देश-विदेश के लोकगीत बहुत ही पसन्द हैं । [2] भारती को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अन्तर्गत एक प्रवक्ता के रूप में जीविका निर्वाह का सम्मानास्पद स्थान मिला परन्तु उनका स्वतंत्र मन अध्यापकीय वृत्ति से मुक्त होने को उत्कंठित था। अन्ततः सन् १९५९ में सम्पादक नियुक्त हुए और आज भी नियुक्त हैं।[3] इस लोकप्रिय पत्रिका के हाथ में आते ही भारती की बहुमुखी सृजनात्मक प्रतिभा को "टाइम्स आफ इण्डिया" तथा 'ज्ञानपीठ" जैसी प्रसिद्ध प्रकाशन सस्थाओं से प्रकाश में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। "प्रयाग में रहकर इन्होंने लीडर प्रेस से प्रकाशित होने वाले सगम साप्ताहिक मे श्री इलाचन्द्र जोशी के सहायक के रूप में काम किया और बाद में "साहित्य भवन लिमिटेड" के 'निकष" का सम्पादन कार्य भी किया ।[4]

डा० धर्मवीर भारती के व्यक्तित्व में "लापरवाही नस-नस में भरी है, जिससे अपना नुकसान तो कर ही लेता हूं, दूसरों की नाराजगी को भी न्यौता देता फिरता हूं। हूं धुनी, धुन में आने की बात है। हौसले तो पहाड़ों को उलट देने के है।"[5]

---

१ दूसरा सप्तक, पृ० १७५
२ वही, पृ० १७५
३ धर्मवीर भारती की कनुप्रिया तथा अन्य कृतियां—डा० वृजमोहन शर्मा पृ० ८
४ नयी कविता : नये कवि—विश्वम्भर मानव, पृ० २६१
५ दूसरा सप्तक, पृ० १७७

कवि के रूप में धर्मवीर भारती का स्थान 'दूसरे सप्तक' में है। दूसरे सप्तक के सात कवि हैं – (१) श्री भवानीप्रसाद मिश्र, (२) श्री शकुन्तला माथुर (३) श्री हरिनारायण व्यास, (४) श्री शमशेर बहादुर सिंह, (५) श्री नरेश मेहता, (६) श्री रघुवीर सहाय और (७) श्री धर्मवीर भारती[1] 'दूसरा सप्तक' मे धर्मवीर भारती की तेरह कविताएं संकलित हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है—

(१) थके कलाकार से
(२) कवि और कल्पना
(३) गुनाह का गीत
(४) गुनाह का दूसरा गीत
(५) तुम्हारे पांव मेरी गोद में
(६) उदास तुम
(७) सुभाष की मृत्यु
(८) एक फैंटेसी
(९) बरसाती झोंका
(१०) यह दर्द
(११) चुम्बन
(१२) बाड़े की शाम
(१३) कविता की मौत[2]

डा० नामवरसिंह लिखते हैं कि रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, हरि व्यास जैसे नए कवियों की संगति तो स्पष्ट है, किन्तु साही के शब्दों में "जांच रनिक" मुद्रा वाले धर्मवीर भारती का चुनाव "तार सप्तक" की प्रतिज्ञा को स्मरण करते हुए निश्चित रूप से असंगत है।[3] यहां उल्लेखनीय है कि डा० भारती की काव्यानुभूतियां निजी और मौलिक हैं केवल उनका रुझान रोमानी अवश्य है। डा० धर्मवीर भारती मे सृजनात्मक प्रतिभा जन्मजात है, जिसको उन्होंने अपनी भावुक प्रवृत्ति से निखार कर एक विचित्र रूप में प्रस्तुत किया है। दूसरे सप्तक' में धर्मवीर भारती ने स्वयं

१- दूसरा सप्तक ('भूमिका' से उद्धृत), पृ० २
२- नई कविता : उद्भव और विकास– डा० रामवचनराय, पृ० १३८
३- कविता के नये प्रतिमान– डा० नामवरसिंह (राजकमल प्रकाशन दिल्ली– प्रथम संस्करण १९६८ ई०), पृ० ९४

अपनी जीवनी के बिन्दु को लेकर कहा है– 'हां'' यह जरूर है कि जिस आन्दोलन और विचारधारा मे मानवता की मुक्ति का क्षीण से क्षीण आलोक कण है, सच्चे, स्वस्थ और ईमानदार कलाकार की आत्मा ग्रहण किये बिना चैन ही नही पाती ऐसा उसका विचार है– भारतीय-कविताए कम लिखता हूं लेकिन जब लिखता हूं तो अपनी रुचि की और ईमान की।[1] भारती जी को साहित्य के हर रूप में रुचि है और वे हर विधा पर लिखते आ रहे हैं किन्तु यह सच है कि भारती जी की कविता उनसे कतई संतुष्ट नही है। इसलिए यदि आप पूछेंगे तो कविता बहुत नाराज होकर, भौहें सिकोड़ कर, मान भरे स्वरो में कहेगी 'न जाने किसने कहा था इनसे कविता लिखने को ? कभी छठे छमासे फ़ुरसत पाई तो याद कर लिया, मुंह पर मीठी-मीठी बातें कर ली, फिर जैसे के तैसे। न कभी नाराज होकर हमे तोड़ा मरोड़ा, न कभी रीझ कर सजाया, सवारा। ऐसा भी क्या ? किसके पाले पड़ी हूं, मेरा तो भाग्य ही फूट गया।[2] डा० भारती मूलत. एक रोमानी अदाज एवं सौन्दर्य चेतना के कवि है। उनकी रचना में प्रसाद जी की सी रोमानी प्रवृत्ति, निराला की सी स्वछन्द आवेगमयता और पन्त जैसी चित्र योजना उजागर हुई है।

कृतित्व-परिचय

डा० धर्मवीर भारती के कृतित्व का कथ्यमूलक सन्दर्भो तथा शैलिपक प्रतिमानो की दृष्टि से मूल्यांकन करने के पश्चात् कहना पडेगा कि भारती जी एक स्वस्थ चिन्तक, शीर्षस्थ नाटककार, अग्रगण्य कथाकार और सफल निबन्धकार है, इसके साथ ही एक रोमानी एवं भावुक कवि के रूप में उन्होंने जो साहित्यिक लोकप्रियता प्राप्त की है, वह भी अप्रतिम है। भारती जी की साहित्यिक सरचना मे उनकी भावुकता मंगल कुमकुम के समान सर्वत्र परिलक्षित होती हैं।

भारती जी के अब तक तीन काव्य ग्रन्थ और एक रूपक प्रकाशित हो चुके हैं। वे इस प्रकार है –

(१)	ठण्डा लोहा	१६५२
(२)	अन्धा युग	१६५५

१- दूसरा सप्तक (प्रथम सस्करण), पृ० १७५
२- वही पृ० १७६

(३) सात गीत वर्ष १९५९

(४) कनुप्रिया १९५९

धर्मवीर भारती का प्रकाशित अन्य साहित्य इस प्रकार है—

उपन्यास— गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा।

कहानी सग्रह— मुर्दों का गांव, चांद और टूटे हुए लोग, बन्द गली का आखिरी मकान आदि।

निबन्ध सग्रह — ठेले का हिमालय, कहनी अन कहनी, पश्यन्ती।

समीक्षात्मक संग्रह— सिद्ध साहित्य (शोध प्रबन्ध) प्रगतिवाद : एक समीक्षा तथा मानव मूल्य और साहित्य।

एकांकी सग्रह— नदी प्यासी थी।

काव्य नाटक— सृष्टि का आखिरी आदमी

अनुवाद— आइस्कर वाइल्ड की कहानियां।

देशान्तर— २१ पाश्चात्य देशों की १६१ कविताओं का अनुवाद।

डा० भारती के साहित्य पर विभिन्न समीक्षात्मक संदर्भ इस प्रकार हैं— "आलोचना" दिसम्बर १९६६ में वैजनाथ सिंहल का लेख 'नयी कविता नये धरातल" में डा० हरिचरण वर्मा का लेख 'धर्मयुग" में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का "नयी कविता एक पुनरीक्षण नामक लेख माला। कविता और कविता डा० इन्द्रनाथ मदान।" [1]

काव्यकृतियों का परिचयात्मक विवेचन

ठण्डा लोहा

डा० भारती की 'ठण्डा लोहा" एक सशक्त काव्य संरचना है। "ठण्डा लोहा" का प्रकाशन १९५२ ई० में हुआ था। "ठण्डा लोहा" डा० भारती की उन रचनाओं का सकलन है जिनकी सर्जना १९४६ से १९५२ की षट्वर्षीय मध्यावधि मे हुई है। डा० भारती जी की यह धारणा पुष्टिकारक सिद्ध होगी कि इस संग्रह में दो कविताए मेरे पिछले छः वर्षों की कविताओं में से चुनी गई हैं और चूंकि यह समय अधिक मानसिक उथल-पुथल का रहा अतः इन कविताओं का स्तर, भावभूमि, शिल्प और

१- नयी कविता— डा० कान्तिकुमार, पृ० ३१९

टोन की काफी विविधता मिलेगी । [1] इसके साथ ही साथ टोन और शिल्प की विविधता का दूसरा कारण कविता सृजन में एक नैरन्तर्य का अभाव है। "दूसरा सप्तक" में अपने वक्तव्य में भारती जी ने स्वयं स्वीकारा है कि सच तो यह है कि भारती की कविता उससे कतई सन्तुष्ट नही है। इसलिए यदि आप कुछ पूछेंगे तो कविता बहुत नाराज होगी । भौंहें सिकोड़ कर, मनमाने स्वरो मे कहेगी, "न जाने किसने कहा था इनसे कविता लिखने को ? कभी छठे छमासे फुरसत पाधी तो याद कर लिया, मुह पर मीठी-मीठी बातें कर ली, फिर जैसे के तैसे ।[2] भारती जी ने पूरी ईमानदारी और अनुभूति को इन रचनाओं मे रूपायित किया है। उनकी मानसिक गतिविधि की प्रतिच्छाया इन रचनाओं मे फूट पडी है। भारती ने इस तथ्य को स्वीकारा है कि— 'वे अपने को और अपनी कविताओं को चाक पर चढ़ी हुई गीली मिट्टी मानते हैं जिसमे से कोई अनजान अंगुलियां धीरे-धीरे मनचाहा रूप निकाल रही है ।[3]

'ठण्डा लोहा' प्रेमजन्य कुंठा का प्रतीक है। "शृंगारिक कविताओं में मिलन का स्वर जैसा मधुर एवं सरस है, विरह का वैसा ही वेदनापूर्ण एवं कटु है। प्रिया द्वारा अस्वीकृति एवं आनन्दोपयोग के अभाव की कचौटी ने कवि को कुंठित कर दिया है।"[4] कवि की अपूर्ण अभिलाषाएं एवं कामनाएं दमित वासनाओं मे परिवर्तित हुई है। यत्र-तत्र इसके सकेत भी उनकी रचनाओं मे दृष्टिगत होते हैं —

> 'एक-सा स्वाद छोड जाती हैं जिन्दगी तृप्त भी प्यासी भी
> लोग आये गए बराबर है शाम गहरा गई उदासी भी।"[5]

प्रतीक विधान की दृष्टि से भी 'ठण्डा लोहा' एक सशक्त रचना है। स्वयं पुस्तक का नामकरण लोक जीवन से संग्रहीत एक प्रतीक है, जो स्वतन्त्र युग की बौखलाहट, अव्यावहृत कुंठा, मानसिक द्विधा, आवश्यक उधेड़बुन को इंगित करने मे समर्थ है। भारती ने इस कृति के माध्यम से

१- ठण्डा लोहा— भारती के 'वक्तव्य' से उद्धृत
२- दूसरा सप्तक— भूमिका, 'वक्तव्य' का एक अंश
३- ठण्डा लोहा, वक्तव्य से उद्धृत
४- धर्मवीर भारती : कनुप्रिया तथा अन्य कृतियां पृ० १३८
५- ठण्डा लोहा की 'उदास तुम से' शीर्षक कविता से

लघुमानव को पूर्णतया आश्वस्त ही नहीं अपितु उसे सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए भी प्रोत्साहित किया है।

अन्धा युग

"अन्धा युग" डा० भारती की बहुचर्चित कृति है। इस काव्य रचना का प्रकाशन १९५५ में हो चुका था। अन्धा युग का कथानक प्रख्यात है जिसमे महाभारत के शल्य पर्व, सौप्तिक पर्व, स्त्री पर्व, शान्ति पर्व, आश्रम वासिक पर्व एवं महाप्रस्थानिक आदि दीर्घ प्रसगों में बिखरे इतिवृत को चयन कर सुगम्बद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें कथानक का श्रीगणेश, सरस्वती, विष्णु एव व्यास की वन्दना से हुआ है। डा० कमला प्रसाद पाण्डेय की धारणा है कि—"इस प्रख्यात कथा-वस्तु में नए सन्दर्भ, नयी समस्यायें, युद्ध की संस्कृति एव अनास्थाओं की मौलिक एवं नवीन वस्तु को कवि ने एक साथ रूपायित किया है। पात्र एवं घटनाएं भी उदात्त है यद्यपि उनकी रेखाओं का रंग पुराना है।"[1]

"भारती नयी कविता के मूर्धन्य कवि है इसलिए उनकी कविता ने समस्त मानव की विविध भावभूमियों मे सक्रमण करती चेतना को सस्पर्श किया है।"[2] "अन्धायुग" मे आधुनिक युग के चिन्तन का महत्त्व भी स्पष्टत द्रष्टव्य है। धृतराष्ट्र अपने अन्धेपन के बावजूद भी अपने अन्धे ससार में डूबे हैं। वे अपनी वैयक्तिक सवेदना में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कवि के शब्दों मे—

'मुझे अपने ही वैयक्तिक सवेदन से जी जाना था
केवल उतना ही था मेरे लिए वस्तु जगत

× × ×

मेरी ममता ही वहां नीति थी
मर्यादा थी।"[3]

भारती जी ने इस रचना में नारी-गौरव की भी प्रतिष्ठापना कर दी है। गांधारी के चरित्र में अभिव्यंजित पत्नीत्व और मातृत्व की भावना

१- छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पृ० ३३६
२- अन्धा युग, पृ० १९–२०
३- धर्मवीर भारती की कनुप्रिया एवं कृतियाँ, पृ० १४८

काव्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अन्धायुग में अनेक प्रश्नों का समाधान गीता-कृष्ण में ढूंढ़ा गया है जहां कृष्ण विनाशोपरान्त सृजन की प्रक्रिया का संकेत देते हैं। इस कृति में—"भावकी सफलता और उनकी तीव्र अकुलाहट की अभिव्यक्ति लालसा उसका प्राण तत्व है।"[1] निष्कर्षतः 'अन्धायुग' कथ्य योजना, चरित्र विधान, संवाद गौरव, शैली विधान और उद्देश्य की दृष्टि से सफल नाट्य-काव्य है। नाटक में सम्प्रेषणीयता एवं जीवन दर्शन को व्यक्त करने की गहरी क्षमता होती है और काव्य में भावनात्मक गहराई को रूपायित करने की अद्भुत सामर्थ्य। जिस कृति में नाट्य एवं काव्य दोनो का योगदान हो वह निश्चित रूप से साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी। इस दृष्टि से अन्धायुग नयी कविता की श्रेष्ठ एवं महानता कृति है जिसमें विषय वस्तु के निर्वाह के साथ-साथ आगामी पीढ़ी के दिशाबोध की क्षमता है।

सात गीत वर्ष

भारती जी के काव्य संग्रह 'सात गीत वर्ष' का प्रकाशन सन् १९५९ में हुआ। भारती की कविता परोक्षतः प्राचीन और नवीन, आदर्श और यथार्थ, स्वच्छता और प्रयोग की वयःसन्धि की कविता है। 'सात गीत वर्ष' की भूमिका में लेखक ने स्वयं घोषित किया है कि वह केवल परम्परा तोड़ने के लिए परम्परा नही तोड़ता और न प्रयोग मात्र के लिए प्रयोग करता है बल्कि उसकी रचना प्रक्रिया मे चाहे कितनी ही अप्रत्यक्ष रूप में हो, जीवन प्रक्रिया अनिवार्यतः उलझी रहती है।[2] कवि ने प्रस्तुत काव्य की भूमिका में 'क्षण' को काव्य सृजन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु घोषित किया हैं। 'सात गीत वर्ष' शिल्प पक्ष की दृष्टि से कवि की प्रौढ़तम कृति है; इस कृति में उपमान, प्रतीक, बिम्ब, शब्द-शक्ति संबंधी कलात्मक प्रयोग आद्यन्त बिखरे पड़े हैं।[3]

भारती जी की रचनाएं संख्या मे कम हैं। फिर भी गुणात्मक उत्कर्ष के कारण वे अत्यन्त लोकप्रिय कवि हैं। उनकी भावयुक्त, सरस

१- नयी कविता : रचना प्रक्रिया, पृ० २५४
२- सात गीत वर्ष – भूमिका से उद्धृत
३– धर्मवीर भारती कनुप्रिया एवं अन्य कृतियां– डा० ब्रजमोहन शर्मा, पृ० १६०

भाषा और मार्मिक अभिव्यंजना उनके काव्यों की सफलता और लोकप्रियता का रहस्य है। छायावाद मे काव्य का जो श्रेय और प्रेय है, उसका आकर्षण भारती जी के काव्य में सर्वत्र बना हुआ है। उनकी 'गुनाह का गीत', 'श्याम दो मन. स्थितियां', नवम्बर की दोपहर', अंधेरे का फूल', 'सांझ के बादल', प्रभृति शुद्ध छायावादी रचनाएं हैं। डा० भारती की काव्य रचना 'अन्धा युग' पौराणिक विषय पर रचित होते हुए भी आधुनिक भाव बोध की कृति हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारती की काव्य कृतियां शैल्पिक संरचना और भाव बोध दोनों ही दृष्टियों से समुन्नत हैं।

भारती के कृतित्व में 'कनुप्रिया' के वैशिष्ट्य का महत्वांकन

भारती की सभी काव्य संरचनाओं में अस्तित्ववादी धारणा का ज्वलन्त रूप देखने को मिलता है। कनुप्रिया' क्षणवादी धारणा का काव्यात्मक प्रतिफलन है। 'कनुप्रिया' का कथ्य बहुत पुराना है किन्तु उसका सम्वेदनस्तर निश्चय ही नवीन और नयी कविता के अनुकूल है। इस काव्य मे राधा-कृष्ण के लीलामय प्रेम को आधुनिक परिवेश मे नूतन सवेदन स्तर पर प्रस्तुत किया गया है। 'कनुप्रिया' की पहली विशेषता यह है कि राधा कृष्ण का प्रणय निवेदन होते हुए भी यह शाश्वत पुरुष और शाश्वत नारी का प्रणय प्रतीत होता है। ऐसा भी लगता है कि यह सभी युगों के सभी स्त्री-पुरुषों का प्रणय व्यापार हो। [१] सौन्दर्य और प्रणय के जितने भी सकेत 'कनुप्रिया' में प्राप्त हैं, वे अनुपम हैं। उनके अन्तर्गत मुद्राओं, क्रियाओं, भावनाओं एव स्मृतियों के चित्र अत्यधिक सजीव बन पड़े हैं। ऐसी रसमयता और भव्यता बीसवीं शताब्दी के किसी अन्य काव्य-ग्रन्थ में खोजने पर भी नहीं मिलती। परस्पर विरोधी भावो के सौन्दर्य का एक शब्द चित्र द्रष्टव्य है—

> "अक्सर जब तुमने वंशी बजाकर मुझे बुलाया है
> और मैं मोहित मृगी सी भागती चली आयी हूं
> और तुमने मुझे अपनी बाहों मे कस लिया है
> तो मैंने डूबकर कहा है :
> कनु मेरा लक्ष्य है, मेरा आराध्य, मेरा गन्तव्य।
> पर जब दुष्टता से

१– नयी कविता : नये कवि– विश्वम्भर मानव, पृ० २६१

अक्सर सखी के सामने मुझे बुरी तरह छेड़ा है
तब मैंने खीझकर
आँखों में आंसू भरकर
शपथें खा-खा कर
सखी से कहा है :
"कान्ह" मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं है
मैं कसम खाकर कहती हूं
मेरा कोई नहीं है।[1]

"कनुप्रिया" काव्य की दूसरी विशेषता यह है कि यह-"माया जितनी पौराणिक है, उतनी ही आधुनिक है।[2] वैसे यह वर्णन देश कालातीत हो चुका है। यह भी संभव है कि इसकी मूल प्रेरणा कवि को किसी आधुनिक रोमांस से मिली हो।" यह कहानी प्रेम के सभी रूपों और स्तरों को छूती हुई चलती है। शरीर मन में, मन बुद्धि में, बुद्धि दिव्यता की एक अवर्णनीय तन्मयता मे परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक धरातलों को एक साथ स्पर्श करने के कारण यह गाथा शब्द अर्थ और व्यजना से परे एक अनिर्वचनीय आनन्द की सृष्टि करती है। सम्पूर्ण कथ्य ही रस पूर्ण है।"[3]

"कनुप्रिया" एक ऐसा प्रबन्ध काव्य है जो आधुनिक शिल्प और भाव बोध दोनों को आत्मसात् किये हुए है। "कनुप्रिया" की मूल सवेदना प्रेम है किन्तु इस संवेदना को उसकी गहराइयों मे उभरते हुए कवि ने उसे मूल्यो से असपृक्त नही किया है। राधा को छोड़कर अकेले कृष्ण का निर्णय जुए के पासे की तरह फेंका हुआ प्रतीत होता है। यथा—

"और जुए के पासे की तरह तुम निर्णय फेंक देते हो
जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म।"[4]

"कनुप्रिया" मे राधा के रूप में पौराणिक प्रतीको के विकास-क्रम की दिशा में एक निश्चित चरण की अभिवृद्धि हुई है। "राधा गहरी तन्मयता

१- कनुप्रिया, पृ० ३३-३४
२- नयी कविता : नये कवि, पृ० २६६
३- नयी कविता : नये कवि-विश्वम्भर मानव, पृ० २६६
४- हिन्दी कविता : तीन दशक – डा० रामदरश मिश्र, पृ०

के क्षणों की आन्तरिक निष्ठा और वस्तु परक ऐतिहासिक युग सत्य को प्रश्नात्मक रूप मे देखती है। ऐसा लगता है मानो राधा भारतीय सस्कृति की मूल रागात्मक प्रवृत्ति के प्रतीक रूप में आधुनिक जटिल परिवेश के बीच भावी युग–निर्माण में अपनी सार्थकता का महत्व बल पूर्वक स्थापित करती है।[1] राधा अपनी सार्थकता मात्र सकेतित नही करती वरन् आग्रह के साथ जतला देना चाहती है–एक विनम्र चुनौती के रूप मे कि वस्तु परक युग चिन्तन का सत्य अन्तत. अर्द्ध सत्य है।"[2] राधा–कृष्ण के प्रेम प्रसंग के बिन्दु को लेकर आज तक बहुत कुछ लिखा गया है किन्तु भारती की "कनुप्रिया" इन सब में अपना विशेष स्थान रखती है। वह आज के समाज के सामने एक साथ कई प्रश्न–चिन्ह उत्पन्न करती है। जैसे रचनाकार के ही शब्दों में–'वह क्या करें, जिसने अपने सहज मन से जीवन जिया है. तन्मयता के क्षणो में डूबकर सार्थकता पाई है और जो अब उद्घोषित महानेताओं से अभिभूत और आतंकित नही होता, जबकि आग्रह करता है कि वह उसी सहज की कसौटी पर समस्त को कसेगा।"[3]

इस प्रकार "कनुप्रिया" में राधा का व्यक्तित्व दो बिन्दुओ पर उपस्थित है–एक तो रागात्मक और दूसरा प्रश्नाकुल; किन्तु दोनों में बाहर से भले ही न हो, एक आन्तरिक संगति दिखायी देती है। राधा की समस्त प्रतिक्रियाएं भावाकुल स्थिति के विभिन्न स्तरो के रूप में ही प्रस्तुत की गयी हैं। 'कनुप्रिया" की शैली में नाटकीयता है, जो परिवेश की गतिशीलता और उसके उत्थान–पतन को व्यक्त करती है। यह नाटकीयता है जो परिवेश की गतिशीलता और उसके उत्थान–पतन को व्यक्त करती है। यह नाटकीय शैली भावों को व्यक्त करने में भी पूरी तरह सफल सिद्ध हुई है।[3] अनेक स्थलों पर तो स्थिर बिम्ब भी नाटकीयता से युक्त हैं। यथा–

मैंने कोई अज्ञात वन देवता समझ
कितनी बार तुम्हें प्रणाम कर सिर झुकाया
पर तुम खड़े रहे, अडिग, निर्लिप्त, वीत राग, निश्चल
तुमने कभी उसे स्वीकारा ही नही।[4]

१- नई कविता : उद्भव और विकास–डा० रामवचनराय, पृ० २५६
२- नई कविता–अंक ५–६, वर्ष १९५०–६१, पृ० ५७
३- कनुप्रिया, पृ० ७
४- कनुप्रिया पृ० १४

"कृष्ण के सम्पर्क से राधा ने जो कुछ भी उपलब्ध किया वही इतिहास के अन्तराल में उससे छूटता दिखायी देता है। वह रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण और बुझी हुई राख के समान हो गयी है। उसके मन मे यदि कुछ शेष रह गया है तो वह सशय, जिज्ञासा का प्रश्न है जो कृष्ण के अभाव में अपने पूर्व संबंधों की स्थिति के विषय में अवतरित हुए हैं।[1] यथा—

"कौन था वह
जिसने तुम्हारी बाहों के आवर्त में
गरिमा से तनकर समय को ललकारा था
कौन था वह
जिसकी अलकों में की समस्त गति
बान्ध कर पराजित थी।"[2]

'कनुप्रिया" नयी कविता की रचना शैली मे रचा गया आधुनिक भाव बोध से सयुक्त प्रबन्ध काव्य है। सच तो यह है कि "कनुप्रिया" की मूल सवेदना रागात्मक चेतना से जुडी है। कवि ने प्राचीन आख्यान को अवश्य लिया है किन्तु उसका निर्वाह युग सत्य के परिपार्श्व मे किया है। इसलिए महाभारत के युद्ध और द्वितीय युद्ध की प्रतिक्रियाओं को समन्वित रूप मे चित्रित किया गया है। इस काव्य के कथ्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें इतिहास की प्रक्रिया को रागात्मक प्रेरणा या रचनात्मक सोद्देश्यता पर विचार करते हुए डा० धर्मवीर भारती ने उचित ही कहा है कि— 'कनुप्रिया की सारी प्रतिक्रियाए तन्मयता की स्थितियां है।"[3]

डा० धर्मवीर भारती ने "कनुप्रिया" की सृजनात्मकता के औचित्य को प्रमाणित किया है—'कनुप्रिया" की सृजन प्रेरणा के सबंध मे कवि का व्यक्तित्व हमारे सम्मुख है। यह तो सच है कि डा० धर्मवीर भारती का उद्देश्य "कनुप्रिया" का चरित्र विश्लेषण ही है। वही इस काव्य की मूल विशेषता भी है। यह तथ्य सम्पूर्ण काव्य के अनुशीलन से उजागर होता है। कवि का लक्ष्य राधा के चरित्र का नवीन और युगीन परिप्रेक्ष्य मे अंकन करना भी है। कृष्ण का चरित्रांकन तो परोक्ष रूप मे ही हुआ है।

१- नयी कविता : नये धरातल–डा० हरचरण शर्मा, पृ० २०५
२- कनुप्रिया, पृ० ५८
३- कनुप्रिया–"भूमिका" से उद्धृत

एक समीक्षक के शब्दों में— 'कनुप्रिया'' राधा के प्रेम सवेदन स्वरूप की ही मार्मिक अभिव्यक्ति है। उसमें प्रेम सवेदन के माध्यम से ही जीवन को समझने का प्रयास किया गया है। सारे काव्य की रचना का उद्देश्य कृष्ण के साथ बीते राधा के तन्मय क्षणों की विभिन्न स्थितियों को रूप देना है। है। जो कतिपय स्थूल कथा प्रसग बीच-बीच में काव्य मे आये है वे भी राधा के प्रेम सवेदना के अग हैं।[1]

कनुप्रिया की सृजनात्मक प्रेरणाएं तथा रचनात्मक सोद्देश्यता—

धर्मवीर भारती की काव्य सर्जना उनके व्यक्तित्व का जीवन्त प्रतिरूप है। भारती जी ने यद्यपि कहानी, उपन्यास, एकांकी, निबन्ध, नाटक और अनुवाद आदि विविध साहित्यिक विधाओ पर लिखकर अपनी सर्जनात्मक मेधा का प्रभूत परिचय दिया है तथापि उनकी प्रतिभा का उत्तमांश काव्य-सृजन में ही प्रतिफलित हुआ है। 'कनुप्रिया' कवि का एक सशक्त प्रबन्ध काव्य है। इस कृति में भारती ने राधा-कृष्ण के प्रसंग के सहारे आधुनिकता और रोमांनियत को समन्वित धरा पर रूपायित किया है। प्रणय के विविध आयामों की वैचारिक परिणति के रूप में 'कनुप्रिया' एक विशिष्ट उपलब्धि है कनुप्रिया' की आत्मा राधा के व्यथा भरे प्रश्नों में गुंजरित है। यथा—

> 'सुनो कनु सुनो
> क्या में सिर्फ सेतु थी
> तुम्हारे लिए
> लीलाभूमि और युद्ध क्षेत्र के
> अलध्य अन्तराल में।'[2]

'कनुप्रिया' राधा और कृष्ण के प्रणय-प्रसंगों पर आधारित रचना है। इसमें भारती ने इस युगल के कतिपय प्रणय-प्रसंगो को आधार बना कर उन्हें आधुनिक भूमिका पर प्रस्तुत किया है। 'कनुप्रिया' आकार की दृष्टि से बड़ी नहीं किन्तु वह अपने लघु कलेवर में भी एक ऐसी रचना है जिसमें गम्भीरता, सूक्ष्मता और तन्मयता भरपूर है। डा० रमेश कुन्तल मेघ के शब्दों में कनुप्रिया' में दो केन्द्र बिन्दु मिलते हैं—क्षण और सहज। 'कनुप्रिया' कृष्ण की प्रिया है। उसमें कैशोर्य सुलभ मनः स्थितियाँ विद्यमान हैं,

1- नयी कविता : नये कवि, पृ. 260

2- कनुप्रिया.

जो विवेक से अधिक तन्मयता, इतिहास की उपलब्धियों से अधिक सहज जीवन मे सार्थकता पाती है। राधा के व्यक्तित्व मे जो भावाकुल तन्मयता है उसके प्रति कवि स्वयं सचेत जान पड़ते हैं। उन्होंने कनुप्रिया की भूमिका में ही स्वीकार किया है कि – कनुप्रिया अपने अनजान मे ही प्रश्नो के ऐसे सन्दर्भ उद्घाटित करती है जो पूरक सिद्ध होते हैं। पर यह सब उसके अनजान में ही होता है क्योंकि उसकी मूलवृत्ति संशय या जिज्ञासा नही भावाकुल तन्मयता है।[1] साक्षात्कार के क्षणो मे वह कई बार कृष्ण के पास ठीक समय पर नही पहुँच पाती है तो न सही, किन्तु वह इन क्षणो में भी अपने को कृष्ण से अलग भी नहीं मानती है। इसके साथ ही राधा एक बावली तथा भोली लड़की की तरह जान पड़ती है।' यमुना के तट पर गोधूली बेला में कृष्ण की राधा के लिए आतुर प्रतीक्षा, झुकी डाल से खिले बोर को तोड़ना है और अनमने भाव से चलते-चलते आम्र मजरी को चूर-चूर कर मांग सी उजली पगडडी पर बिखेरना, कृष्ण का पक्के फलों को मसल कर राधा के पैरो मे महावर लगाना तथा राधा का लाज से धनुष की तरह दुहरी हो जाना।'[2] 'राधा-कृष्ण' ऐसे प्रतीक चरित्र हैं जिनके माध्यम से भारतीय जाति अपनी मूल प्रतिमा को मूर्त रूप देती है। 'गोकुल का नटखट ग्वाल बालक और महाभारत का परम कूटनीतिज्ञ-जिस कृष्ण मे दोनों रूप समन्वित होते हैं, वह केवल राधा का प्रेम या वैष्णव सम्प्रदाय का उपास्य नहीं है, बल्कि समूची भारतीय प्रतिभा का शलाका पुरुष है।'[3] राधा के प्रणय की वैचारिक पृष्ठभूमि है जो उसे भावाकुल तन्मयता से चिन्तन के क्षणों में ले जाती है। काव्य मे आगे चलकर राधा युद्ध की अमंगल छाया का अनुभव करती है और युद्ध की भीषण परिस्थितियों में अपने प्रेम को असहाय और बेबस अनुभव करती हुई अपने से ही अजनबी बन जाती हैं। एक बार यह मान लेने पर कि व्यक्ति की उपलब्धि उसके क्षण की तन्मयता, मात्र भावावेश है, धर्माधर्म, न्याय दण्ड और क्षमाशील दायित्व सत्य है तो भी किसने उन उपलब्धियो को सार्थकता का अनुभव किया है। उसके लिए इस युद्ध घोष, क्रन्दन स्वर, अमानुषिक घटनाओं वाले इतिहास की सार्थकता समझ पाना कठिन है।'[4] व्यक्ति की उपलब्धियो की

1- नयी कविता : नये धरातल, पृ 197

2- नयी कविता : नये धरातल, पृ० 199

3- विवेक के रंग . अज्ञेय, पृ० 109

4- नयी कविता नये धरातल 206

सार्थकता के बिना दायित्व की व्याख्या करने वाला शब्द अर्थहीन होता है। इसी कारण राधा इन शब्दों की व्याख्या के स्थान पर कृष्ण की वाणी को ही अधिक महत्वपूर्ण मानती है। 'कनुप्रिया मे राधा की उद्दाम प्रेम-भावना प्रकट हुई है। वह समय के धनुर्धर को ठहरकरतब तक कि प्रतीक्षा करने को कहती हैं जब तक वह अपनी प्रगाढ केलि-कथा का विराम चिन्ह अंकित कर दे।'[1] इस परिप्रेक्ष्य में यदि विचार करें तो राधा विद्यापति सूर, देव और रत्नाकर तथा हरिऔध एवं मैथिलीशरण की राधा से बिल्कुल भिन्न है।[2]

सच तो यह है कि भारती द्वारा 'कनुप्रिया" पूर्वमान्य स्वरूप में नहीं अपितु एक नये अर्थ मे एक प्रबन्ध काव्य रचा गया है। इसमें कृष्ण के साथ बीते राधा के तन्मय क्षणों की विभिन्न स्थितियो को रूप देना ही कवि का अभिप्रेत है। "सत्यता के प्रति राधा को आशंका नही होती। यहां तक कि जब कृष्ण सैन-नायक, महाराज और दुनियां की नजरों में महान् बन गये तो भी राधा अपने सत्य को झुठलाती नही। उसे जिये हुए सत्य केअतिरिक्त ऐसा कोई सत्य नहीं दिखता जो उसके अपने लिए सार्थक हो।[3] "कनुप्रिया" में कृष्ण का व्यक्तित्व प्रारम्भिक स्थिति मे निर्लिप्त वीतराग सा दिखता भले ही हो किन्तु वे सम्पूर्ण के लोभी है तथा अपने प्रगाढ संबध से भी पूर्ण बनने वाले हैं। राधा के 'प्रणाम मात्र' से वे सन्तुष्ट नहीं। यह अलग बात है कि वे आगे चलकर इतिहास के व्याख्याता और निर्माता के रूप मे भी दिखाये गये हैं।[4] "कनुप्रिया" में कवि का यह लक्ष्य रहा है कि राधा के सहज तन्मय क्षणों का संकेत करें और फिर कृष्ण के महान् और आतंककारी इतिहास-प्रवर्तक रूप को इंगित करे। 'राधा का आन्तरिक संकट रूप, राधा के सहज कैशोर्य सुलभ आत्म विभोरता के साथ मेल नहीं खाता, किन्तु राधा का आग्रह है कि वह अपने प्रिय को इसी सहजता के स्तर पर समझेगी और ग्रहण करेगी क्योंकि प्रेम का आयाम सहजता का आयाम हो सकता है दूसरे सब आयाम प्रेम के नहीं– बुद्धि के हैं– राग के नही, चिन्तन के हैं।[5] भारती की यह रचनादृष्टि

1- नयी कविता उद्भव और विकास, पृ० 258

2- नयी कविता : नये कवि, पृ० 269

3- हिन्दी कविता : तीन दशक, पृ० 155

4- नयी कविता : नये धरातल पृ० 208,

5- कल्पना (जनवरी 1960), पृ० 59

सचमुच नवीन और युगीन है।

'कनुप्रिया" में कवि ने सौन्दर्यमूलक चित्रों के अंकन में जिस सौन्दर्य कलाकार की सानुपातिक दृष्टि का बोध कराया है, वह संस्तुत्य है। डा० रमेशकुन्तल मेघ ने इस सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि यहां नव्य स्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य बोध व उदात्त दृष्टि का अनूठा सामंजस्य हुआ है।[1] डा० धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया" में आधुनिक नारी के अन्तर्मन की उधेड़बुन, शंका, विवशता और घुटन के साथ-साथ तर्क-वितर्क, स्वातन्त्र्य की भावना का सूक्ष्म निरूपण किया है। डा० धर्मवीर भारती की मान्यता है कि नारी ने विधवा विवाह विलम्बित विवाह, मुक्त माग, विवाह मुक्त जैसी प्रणालियों को सहर्ष स्वीकारा है पर नारी का हृदय यथावत है। आज भी वह पुरुष की अपेक्षा उदार, त्यागी और सदाशया है।[2] भारती ने तन्मयता के सहज क्षणों में जीने वाली राधा के मन्तव्य को श्रेय और प्रेय के दोनों सन्दर्भों में स्वीकारा है। इसका कारण यह है कि दो विरोधी एव विपरीत परिस्थितियों में जीने वाला कृष्ण अधूरा है। स्वधर्म, दायित्व कर्म और निर्णय सब निस्सार और निरर्थक है। समीक्ष्य काव्य में कवि ने अस्तित्व बोध जैसी स्थिति को इंगित किया है जो भावानुकूल तन्मयता के सहज क्षणों को जीने वाली है। भारती जी ने इस तथ्य को भी दृष्टिगत रखा है कि आधुनिक जीवन में दिखावा, आडम्बर, कृत्रिमता, औपचारिक सभापण इतना अधिक सवृद्ध हो चुका है कि प्रेम जैसी सूक्ष्म अनुभूति का अनुभव विडम्बना की बात बन गई है। इस चारों ओर दमतोड़ निराशा, अमानवीय उत्पीड़न, स्वार्थजन्य छल प्रपच के युग में स्वाभाविक प्रेम व्यापार मिथ्या प्रतीत होता नजर आ रहा है। इस स्थिति में डा० भारती ने राधा को एक ऐसी प्रेमपूता के रूप में अंकित किया है जिसने समस्त को प्रेमपरक सहज क्षणों की कसौटी पर कसने का आग्रह किया है। उसे समस्त इतिहास ठहरा हुआ, मरा हुआ, महत्वहीन अनुभूत होता है।[3]

श्री विश्वम्भर मानव का यह कथन प्रस्तुत सन्दर्भ में चिन्त्य होगा

1- हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यो का मूल्यांकन– स० यश गुलाठी, पृ० 727
2- धर्मवीर भारती की कनुप्रिया एव अन्य कृतिया, पृ० 39
3- धर्मवीर भारती की कनुप्रिया एव अन्य कृतियां, पृ० 49

कि "कनुप्रिया की कथा प्रेम के सभी रूपों और स्तरों को छूती हुई चलती है।"[1] कवि ने छोटे-छोटे प्रेम प्रसंगों से इस विषय को गरिमायुक्त और सार्थक बना दिया है। "तुम मेरे कौन हो ?" गद्य गीत में वर्णित विविध प्रसंगों के सहारे विषय में सवर्द्धना हुई है। "आम्र बौर का गीत" में कृष्ण द्वारा आम्र बौर का ताजी क्वारी मांग में भरा जाना, राधा का लाजवश केलि निमित्त न आना और निराश होकर कृष्ण का लौट जाना, रात मे दीपक के मन्द आलोक में अधवनी महावर की रेखाओं को निहारना और चूमना आदि प्रेम–प्रसगों का विशेषतः इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।"[2] "कनुप्रिया" में आद्यन्त राधा के विरहजन्य भावोद्वेलन को भी भारती ने दर्शाया है। इसके कारण इस कृति में सयोग पक्ष सीधा और स्पष्ट नहीं है परन्तु कुछ अतीत–स्मृतियों के माध्यम से सयोग के मधुरतम क्षणों को उरेहा गया है। "कनुप्रिया" में आकर्षण, मिलन संकेत, मिलनाकांक्षा, प्रतीक्षा, केलिक्रीडा, प्रणय व्यापार आदि भाव दशाओं का चित्रण उचित माध्यम से किया गया है।[3] "कनुप्रिया" की मूल संवेदना प्रेम है किन्तु इस सवेदना को उसकी गहराईयों मे उभारते हुए भी कवि मूल्यों से उसे असंपृक्त नहीं कर सका है। कृष्ण का युद्ध सत्य है या राधा के साथ उनका तन्मयता में बीता प्रेम–क्षण। शायद प्रेम के क्षण ही सत्य हैं, क्योंकि वे द्विधाहीन मन की सकल्पनात्मक अनुभूति हैं और युद्ध द्विधा की उपज, अन–जित सत्य का आभास।[4] निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि "कनुप्रिया" राधा कृष्ण की सहज प्रेम–सवेदना के माध्यम से आधुनिक संबंधों के बिखरावपरक जीवन में जीने का भावपरक प्रयास है। कनुप्रिया का भाव बोध भारती का निजी भाव बोध है। "कनुप्रिया" की प्रेम–भावना अद्भुत है। कृष्ण लौकिक होकर भी अलौकिकत्व से सम्पन्न हैं, स्थूल होकर भी सूक्ष्म हैं, ऐन्द्रिय होकर भी अतीन्द्रिय हैं और बन्धन युक्त होकर भी पूर्ण मुक्त है।

नयी कविता की प्रबन्ध काव्य कृतियां और "कनुप्रिया"

हिन्दी की प्रबन्ध काव्य परम्परा का समारम्भ "पृथ्वीराज रासो"

1- नयी कविता-नये कवि, पृ० 269
2- धर्मवीर भारती की कनुप्रिया एवं अन्य कृतियां, पृ० 51
3- कविता और कविता–इन्द्रनाथ मदान, पृ०
4- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ० 205

महा काव्य से होता है किन्तु आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा का आरम्भ हरिऔध जी से माना जाता है। "प्रिय प्रवास" से लेकर "उर्वशी" तक अनेक श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्यों की सरचना हुई है। विशेष रूप से 'कामायानी', 'साकेत', एकलव्य',' पार्वती', 'उर्मिला', 'लोकायतन' प्रभृति प्रबन्ध काव्यों के उच्च कोटि की रचनायें कहा जा सकता है। नयी कविता में भी प्रबन्ध काव्य परम्परा का विकास हुआ है– "कनुप्रिया" नयी कविता के प्रबन्ध काव्यो मे ही परिगणित होती है। "कनुप्रिया" का कथ्य और शिल्प दोनों ही नयी कविता की रचना-शैली के अनुरूप विकसित हुए हैं। नयी कविता की रचना-शैली मे विकसित प्रबन्ध काव्यों में "सशय की एक रात", "महा प्रस्थान" (नरेश मेहता), "अन्धा युग" (धर्मवीर भारती), "कैकेयी" (केदारनाथ मिश्र), "बाणाम्बरी" (रामावतार पोद्दार) मुख्यतः उल्लेखनीय है। "कनुप्रिया", "अन्धा युग" के कवि की दूसरी प्रबन्ध काव्य कृति है। उसका रचनात्मक आधार राधा के चरित्र का विश्लेषण करना है। "कनुप्रिया" का कथात्मक आधार पौराणिक होते हुए भी उसकी सवेदना और प्रेरणा सर्वथा युगीन, नवीन, समकालीन और आधुनिक है। केवल मात्र नयी कविता के सदर्भ मे ही नही वरन् सम्पूर्ण हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा के ग्रन्थो में "कनुप्रिया" विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी है।

नयी कविता की प्रमुख प्रबन्ध काव्य कृतिया इस प्रकार है:—

(1) सशय की एक रात

(2) महा प्रस्थान

(3) अन्धा युग

(4) कैकेयी

(5) बाणाम्बरी

संशय की एक रात

इस प्रबन्ध काव्य के कृतिकार दूसरे तार सप्तक के प्रमुख कवि नरेश मेहता है। 'सशय की एक रात" मे काव्यनायक श्री राम निराला के राम की भाति मानवीय रूप मे हमारे सामने उपस्थित है। ऐसा सम्भव है कि नरेश मेहता ने उसी से प्रेरणा लेकर राम को प्रज्ञावान राजकुमार के रूप मे देखा हो। नयी कविता की भाषा और भावो की परिधि मे घिरा यह काव्य कवि की अनुपम उपलब्धि है। इस खण्ड काव्य की समस्या न तो सैक्स की समस्या है और न समाज के किसी अग से सम्बन्धित "भूख" की समस्या है, वरन् यह तो युद्ध की समस्या है। युद्ध अनिवार्य है। युद्ध

प्रत्येक युग में होता रहा है। कवि नरेश मेहता के हृदय में भी युद्ध का प्रश्न खड़ा हुआ है। इसके लिए कवि दिनकर के कुरुक्षेत्र का अधिक ऋणी है। कुरुक्षेत्र में जैसे युधिष्ठिर युद्धोपरान्त नर संहार से दुखी है वैसे ही "संशय की एक रात" के राम के मन में यह दुःख युद्ध से पूर्व ही समा जाता है। आधुनिक जीवन में जबकि मानव को दुश्चिन्ताएँ चारों ओर से घेरे खड़ी है उसके विकास के लिए क्या युद्ध अनिवार्य है।

कवि ने उसे अपनी उर्वर कल्पना से इस काव्य के कथ्य का विधान किया है। आधुनिक भाव-बोध के साथ सग्रहित करने के लिए राम कथा मे इससे अधिक उपयुक्त प्रसंग और स्थल दूसरा हो ही नहीं सकता था। सेतु बन्ध हो चुका है और राम रावण युद्ध की तैयारी हो चुकी है। राम के मन मे संशय जगता है— क्या बन्धुत्व, मानवीय एकता, धर्म स्थापना और मानवीय विकास आदि युद्ध के बिना संभव नही हैं? इसके बाद राम के मन में अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं और वे सही निर्णय नहीं ले पाते। राम सोचते है कि यदि मैंने युद्ध किया तो उस नरसंहार का उत्तरदायी भी मैं होऊंगा। अतः ऐसा युद्ध, ऐसी विजय सब मिथ्या है। राम युद्ध इसलिए नही चाहते हैं कि सीता हरण उनकी व्यक्तिगत समस्या है। हनुमान, लक्ष्मण और विभीषण के तर्कों के सामने भी राम कुछ निर्णय नहीं कर पाते है। 'संशय की एक रात' काव्य में राम के अपूर्ण व्यक्तित्व के साथ-साथ विभीषण भी संशयालु है, द्वन्द्वग्रस्त हैं।[1] 'संशय की एक रात' के राम मानवीय विकल्पों के पुंज हैं। वे संशय और प्रश्नो के समूह हैं। उनके मन में एक साथ ही अनेक प्रश्न हैं, समस्याएं हैं किन्तु समाधान एक भी नही। वे सारे अशुभ कृत्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं। इस कथ्य की पृष्ठभूमि में 'संशय की एक रात' प्रबन्ध काव्य की रचना हुई है। भाव-बोध और शिल्प संस्कार दोनों की आधुनिकता इस काव्य में विद्यमान है।

'संशय की एक रात' और 'कनुप्रिया' दोनों में समान बौद्धिक चेतना और भाव-बोध को देखा जा सकता है। 'कनुप्रिया' में राधा का जो स्वरूप उभरा है वह उसकी रोमानियत से तादात्मय करके ही खड़ा किया गया है। नयी कविता के रचनाकारों ने मानव जीवन के संत्रास और संघर्ष को वाणी देने में कोई कसर नहीं उठा रखी हैं। इस संघर्ष और सत्रस्त परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि कवि पुराने आदर्श को छोड़

1- नयी कविता : नये धरातल, पृ० 261

नयी भीड़-भाड और अस्तव्यस्तता को काव्य में आकार देने लगा है। बौद्धिक जागृति ने भी पुराने आदर्शों से चिपके रहने से मानो इन्कार कर दिया है। भले ही उसे कुछ लोग परिष्कृत गद्य काव्य भी कहने में हिचकें लेकिन मैं तो उसे एक परिष्कृत खण्ड काव्य मानता हूँ। "संशय की एक रात" मे नरेश मेहता ने राम को आदर्श और रामत्व वाले रूप से परे एक प्रश्नाकुल और विवेकी के रूप में रूपायित किया है।

अन्धा युग—

"अन्धा युग" डा० भारती द्वारा रचित एक प्रबन्ध काव्य है। यह काव्य एक पौराणिक विषय के आधार पर लिखा गया है। "अन्धा युग" पांच अंको में विभक्त किया है। जिसमे कौरवो की अन्तिम पराजय से लेकर कृष्ण की मृत्यु तक की कथा को समेटा गया है। कथा मे शुरू से लेकर अन्त तक संगठन है। कही भी कोई कथा सूत्र टूटता नजर नही आता है। अंकों के शीर्षक प्रतीकात्मक स्तर पर इस तरह दिये हैं—कौरव नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्द्ध सत्य, पंख पहिए और पट्टियां, विजय : एक क्रमिक आत्म हत्या तथा कृष्ण का अवसान। स्वय कवि के शब्दों मे कथा विकास मानवीय मर्यादा की सापेक्ष स्थितियों का सूचक है। सम्पूर्ण कथा पट बुना हुआ है। जैसे—दुर्योधन की पराजय, भीम और दुर्योधन का मल्ल युद्ध, युधिष्ठिर के अधूरे सत्य से उत्पन्न अश्वत्थामा की मनोग्रन्थि का जन्म अश्वत्थामा में हिंसा की जागृति उसके समस्त अकरणीय कर्म तथा अनन्त शारीरिक कौरुज्य। इसी प्रकार 'युयुत्सु' के मन की "ग्रन्थि" और आत्म-हत्या के रूप मे उससे मुक्ति पाना, कृष्ण-गाधांरी वार्ता और कृष्ण की मृत्यु आदि सभी घटनाओं में प्रभाव डालने की पर्याप्त क्षमता है और ये सभी परस्पर अनुस्यूत हैं।

"अन्धा युग" में वातावरण का चित्रण और मूर्तन भी बड़ी गहराई के साथ हुआ है। मानसिक द्वन्द्व आदि का अंकन मनोवैज्ञानिक पद्धति पर किया गया है। "अन्धा युग" की अभिनयात्मक सफलता का सर्वाधिक श्रेय सन्दर्भानुकूल परिवर्तित होने वाली ध्वनि को है। 'अन्धा युग' की प्रमुख शैली है—संवाद शैली। "अन्धा युग" के प्रमुख पात्रो में अश्वत्थामा, गांधारी, संजय, धृतराष्ट्र आदि उल्लेखनीय हैं। कृतिकार अश्वत्थामा के चरित्रांकन मे पर्याप्त सजग रहा है। इससे उसका निराश और मनोग्रन्थिमय व्यक्तित्व कृति की प्रमुख घटनाओं से पूरा तालमेल बैठाये रहता है। "अन्धा युग" में कृष्ण और युधिष्ठिर भी दुर्योधन की पंक्ति में खीच कर

खड़े कर दिये गये हैं। कृष्ण के व्यक्तित्व की सारी गरिमा को छीन कर इसमें उन्हें अनेक स्थानों पर शक्ति का दुरुपयोग करने वाला, झूठी आस्था का प्रचारक, अन्यायी, मर्यादाहीन, और वंचक भी कहा गया है। इस झूठ का विरोध करने वाला पूरी कृति में कोई पात्र नहीं है। "कनुप्रिया" की तरह इस काव्य में कृष्ण चरित्र स्पष्टत. नहीं उभरा है. किन्तु रहस्यमय अवश्य है। एक आलोचक के शब्दों मे कृष्ण युग की 'सेल्फ' की धारणा को प्रतिबिम्बित करते हैं। वस्तुत: वे ही सर्वत्र व्याप्त है--सत्य में असत्य में तभी तो वे सुख-दुख को तथा सारे महाभारत युद्ध के पाप पुण्यों को अपने ऊपर ले लेते हैं।

महा प्रस्थान

श्री नरेश मेहता द्वारा रचित यह एक खण्ड काव्य है। इसका प्रकाशन सन् १९७५ में हुआ था। काव्यकार ने इसमें राज्य तथा व्यक्ति के पारस्परिक संबधों को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है। आलोच्य खण्ड काव्य को तीन सर्गों में विभाजित किया गया है। प्रथम पर्व को यात्रा पर्व की संज्ञा से अभिहित किया गया है। द्वितीय पर्व का नामकरण स्वाहा पर्व है तथा तृतीय का स्वर्ग पर्व। युधिष्ठर का हिमालय की ओर प्रस्थान ही नरेश मेहता के प्रबन्ध काव्य का कथ्य है। व्यक्ति, समाज और राजसता के सन्दर्भ में मेहता जी के विचार इस प्रकार हैं—

"राज्य को शस्त्र सौंप दिये पार्थ
पर जब धर्म और विचार मत सौंपों
राज्य व्यवस्था की नींव में कहराते मनुष्य का होना
एक अनिवार्यता है।[1]

डा० विजेन्द्रनारायण सिंह के शब्दों में श्री नरेश मेहता की नवीनतम प्रबन्ध कविता मे व्यक्ति और व्यवस्था के संबधों की समीक्षा का हिन्दी कविता में प्रथम प्रयास हुआ है। महा भारतीय कथा के समापन में युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण के मिथनीय प्रसंग को उठाकर कवि ने व्यक्ति के अनेक सन्दर्भ सूत्रों की छान-बीन की है।"[2] इस प्रबन्ध काव्य में नव्य मानववादी जीवन दर्शन स्पष्ट रूप से ऊभर कर सामने आया है। उनके इस काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि कवि की अनुभूति में पर्याप्त

1- महा प्रस्थान—नरेश मेहता, पृ० 98-99
2- धर्मयुग—23 नवम्बर, 1975, पृ० 19

गहराई है। प्रस्तुत कृति में कवि शिल्प के प्रति भी अधिक सजग रहा है। सादृश्य-विधान के माध्यम से उन्होंने अनेक दृश्य इस काव्य में प्रस्तुत किये है। भाषा संबंधी उनका पूर्वाग्रह अंगद के पैर की तरह इस प्रबन्ध काव्य में भी टिका हुआ है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के शब्दों मे कहें तो—"काव्य के क्षेत्र मे जो भाषा मर चुकी है उनको जिलाने की वे कापालिक साधना करते दिखाई देते है।"[1] अन्त में कहा जा सकता है कि इस कृति के माध्यम से नरेश मेहता ने व्यक्ति की गरिमा को प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है।

"महा प्रस्थान" की सृजन प्रेरणा के मूल मे राज्य, राज्य व्यवस्था और व्यवस्था के दर्शन की अमानवीय प्रकृति है। युद्ध और राज्य-व्यवस्था मानव समाज के सनातन दुर्भाग्य रहे है, लेकिन यह भी कैसी विषमता है कि सभ्यता और उसका इतिहास इन्ही दो अमानवीय संस्थाओ की क्रूर प्रशस्ति-गाथाएं गाते रहे है। प्रस्तुत काव्य में राज्य तथा व्यक्ति के सम्बन्धों को उद्घाटित करने की चेष्टा की गयी है।[2] निष्कर्षतः हम देखते हैं कि इस खण्ड काव्य की मूल प्रेरक शक्ति व्यक्ति और राज्य-व्यवस्था के पारस्परिक सम्बन्धों का उद्घाटन करना है। दोनों खण्ड काव्यों के सृजनात्मक स्रोतों से संकेत मिलता है कि कवि ने युद्ध और शान्ति के सनातन प्रश्नों, युद्ध की विभीषिका युद्ध की अनिवार्यता, लघु मानव की गरिमा राज्य व्यवस्था और उसका व्यक्ति से सम्बन्ध आदि को मूलतः प्रेरणा बिन्दुओं के रूप मे ग्रहण किया है। नयी कविता के अन्य प्रबन्ध काव्यों की भांति समीक्ष्य कृति भी युग जीवन के जटिल प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करने में सफल सिद्ध हुई है।

कैकेयी—

'कैकेयी' एकार्थ काव्य का प्रणयन श्री केशमणि शर्मा ने किया है। यह प्रबन्ध काव्य सन्त-सर्गो मे रचा गया है। प्रथम सर्ग में केकैयी की वर याचना की पृष्ठभूमि तैयार की गई है। दूसरे सर्ग में दशरथ की दयनीय दशा एवं प्रजा को वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने का उपक्रम किया है। तीसरे सर्ग मे महर्षि को जन क्रांति की सूचना मिलती है। चौथे सर्ग मे

1- दिनमान—22 जून, 75, पृ० 42

2- महाप्रस्थान—'आवरण' पृष्ठ से उद्धृत

राम आदि की वन-गमन की तैयारी, पांचवें सर्ग में दशरथ का मानसिक संघर्ष एवं राम का वन गमन; षष्ठ सर्ग में दशरथ की-मृत्यु, भरत-आगमन एवं पश्चाताप की अग्नि में जलती हुई कैकेयी का वर्णन है। अन्तिम सर्ग में भरत आदि का वन प्रस्थान, लक्ष्मण का क्रोध एवं भरत राम मिलन और कैकेयी द्वारा लौट चलने का प्रस्ताव एवं क्षमा याचना इत्यादि घटनाओं का वर्णन हुआ है। पूरे काव्य पर गाधीवादी विचार-धारा का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रस्तुत काव्य में कैकेयी के जीवन का एक अश लिया गया है। इसीलिए घटनाओं का विस्तार होते हुए भी इसे ह ने खण्ड काव्य ही माना है।

बाणाम्बरी—

श्री रामावतार 'अरुण' द्वारा रचित 'बाणाम्बरी' महाकाव्य में इतिहास प्रसिद्ध सस्कृत के रचनाकार बाणभट्ट की जीवनी का काव्यांकन है। इसके बीस सर्गों के कथानक में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। प्रथम बारह सर्गों का कथानक में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय में मौलिकता का अभाव है। कथा का सयोजन कवि ने बडी कुशलता से किया है। इसमें शृ गार रस की प्रधानता है। भाषा मे तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। इस कृति में बाणभट्ट के जीवन-चरित को युगीन सन्दर्भों में अङ्कित किया गया है। कवि ने 'बाण' के जीवन से सम्बन्धित सामग्री का सकलन 'हर्ष चरित्र', 'कादम्बरी' तथा 'बाणभट्ट की आत्म कथा' से किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध की कथावस्तु में कल्पना का बाहुल्य है। कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रो के चयन में द्विवेदी कृत बाणभट्ट की आत्म कथा' से पर्याप्त सहायता ली है। इसके प्रारम्भ में १२ सर्गों का कथानक अन्तिम आठ सर्गों के कथानक से अधिक प्रभावशाली है। बाणभट्ट के जीवन से सम्बन्धित परम्परा कथानक में कवि ने कोई विशेष हेर-फेर नही किया है।

निष्कर्ष—

इस प्रकार डा. धर्मवीर भारती के सम्पूर्ण कृतित्व का सर्वांगीण मूल्यांकन करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी होते हुए भी भारती जी मूलत: कवि हैं। उन्होंने प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबन्ध, अनुवाद आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर अधिकार लेखनी चलाई

है; किन्तु हिन्दी साहित्य-ससार में वे काव्यकार के रूप में ही बहुचर्चित हुए हैं। 'कनुप्रिया' भी उनके कवि रूप की ही परिचायक कृति है। 'अन्धा-युग' जहा धर्मवीर भारती की नाटच प्रवन्ध काव्य कृति है वहां 'कनुप्रिया' का सम्पूर्ण रचना-विधान शुद्ध प्रबन्ध काव्य कृति का है। 'कनुप्रिया' का सम्पूर्ण रचना–विधान शुद्ध प्रबन्ध काव्य कृति का है। "कनुप्रिया" का रच-नात्मक गौरव इस कृति के शिल्प–वैधानिक और वैचारिक दोनों ही परि–प्रेक्ष्यो में है। "कनुप्रिया" का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि इसमें हमें कवि का प्रखर चिन्तन जागरूक रचना धर्मिता और शिल्प गत वैशिष्ट्य तीनो ही एक साथ एक स्थान पर मिल जाते हैं।

राधा चरित्र मूलक प्रबन्ध काव्य परम्परा और 'कनुप्रिया'

'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति

"राधा" शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य है। "राधा" शब्द "राध्" धातु से "सर्वधानुभ्यो सन्" इत्यादि सूत्र में असु हो जाने से राधस् रूप बन जाता है. उसके तृतीया के एक वचन में राधया बन जाता है। अतः स्पष्ट है कि "राधा" शब्द के तृतीया एक वचन का राधया और राधस् शब्दों से ही राधा बना है किन्तु दोनों का अर्थ एक ही है। "श्री मद्भागवत महापुराण" में एक स्थल पर कहा गया है—

"अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय: गोविन्द प्रीतो यामनयद् रहः ।"[1]

"राधा" शब्द है और उसका अर्थ है तद्रूप हो जाना।"[1] भट्ट जी सिद्धि शब्द तथा रावस किंवा राधा शब्द मे भेद नही मानते हैं। वे लिखते है कि "राध" धातु का भाव प्रत्यय सहित "राधा" शब्द हैं और उसका अर्थ है तद्रूप हो जाना। सिद्धि शब्द की भी व्युत्पत्ति वैसी ही हुई है········ राघस कहो, राधा कहो, राधिका कहो, और चाहे सिद्धि कहो, सबका एक ही अर्थ है—"राधा"! "भगवतः सिद्धि" भगवान की सिद्धि का अर्थ राधस या "राधा"। षिध धातु से भाव में "क्ति" कर देने से सिद्धि शब्द तैयार होता है और उसका अर्थ भी रूपान्तरापत्तिः किंवा तद्भ पापत्तिः होता है, अब "भगवत सिद्धि का" स्फुट अर्थ यह होता है कि भगवान् का रूपान्तर ग्रहण करना और यही "श्री राधा" है।"[2]

राधा का धार्मिक स्वरूप

राधा की परिपूर्णता का स्वरूप वृन्दावनवासी गौडीय वैष्णवों के ध्यान और मनन मे दिखायी देता है। वैसे काव्य शास्त्र में "राधा" का वर्णन पहले से ही उपलब्ध है। राधा के स्वरूप के सम्बन्ध में हमारे समक्ष जितने भी प्राचीन प्रमाण उपलब्ध हैं उनसे प्रतीत होता है कि साहित्य का अवलम्बन बनकर ही राधा का धर्म मत में प्रवेश हुआ। राधा के लीलामय मधुर स्वरूप की महिमा प्रायः सभी स्थलों पर वर्णित है। मधुर रस का घनीभूत विग्रह होने के कारण उसकी प्रतिष्ठा साहित्य में माधुर्य भाव के आधार पर होने लगी। निम्बार्क ने लिखा है— 'वृषभानुनन्दिनी देवी का ध्यान करता हूँ—जो अनुरूप सौभगा के रूप में (कृष्ण के) बाये अग में आनन्द से विराज रही है, जो सहस्र सखियों के द्वारा परिसेवित होती है और जो समस्त मनः कामनाए पूर्ण करती है।"[3] १७ वी शताब्दी में गौड़ीय वैष्णव मतावलम्बी गोस्वामियों मे राधा तत्व का विकास हुआ है। भक्तराय रामानन्द का चैतन्यदेव से गोदावरी के तीर पर जो विचार विमर्श हुआ उसी से ज्ञात होता है कि दक्षिणी देशो के वैष्णवो में राधा तत्व प्रचलित था। जीव गोस्वामी "श्री कृष्ण सन्दर्भ और "प्रीति सन्दर्भ"

1- राधा अक, पृ० 111

2- राधा अक (देवर्षि रमानाथ भट्ट का लेख आदि शक्ति श्री राधिका), पृ० 111

3- निम्बार्क दश श्लोकी, श्लोक 5

का राधातत्व रूप गोस्वामी के "सक्षेप भागवत वृत" और 'उज्ज्वल नील-मणि" में मिलता है। यथा—"प्रेम पराकाष्ठा मे मिलित यह जो अप्राकृत वृन्दावन-धाम का युगल रूप है वही भक्तों के लिए आराध्यतम वस्तु है। इस वृन्दावन में श्री कृष्ण और राधा नित्य-किशोर-किशोरी हैं नित्य किशोर-किशोरी की यह नित्य-प्रेम लीला ही एक मात्र आस्वाद्य है। कहा जा सकता है कि दोनों एक होकर भी लीला के बहाने दो है—अभेद मे ही भेद है। अचिन्त्य शक्ति के बल से ही इस अभेद मे लीला विलास से भेद है।"[1] इस प्रकार वैष्णव साधना में राधा का आरम्भिक स्वरूप धार्मिक दृष्टि से ही विकसित हुआ है।

राधा का आध्यात्मिक स्वरूप

"श्री मद्भागवत महापुराण" के स्कन्ध पुराण में वर्णित माहात्म्य में शाण्डिल्य कहते है कि भगवान श्री कृष्ण की आत्मा राधा हैं। राधिका से रमण करने के कारण ही रहस्य-रस में मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष उन्हें आत्माराम करते हैं—

> "आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमण दासौ।
> आत्मारामतया प्राज्ञै. प्रोच्यते गूढवेदिभिः।"[2]

राधा की आध्यात्मिकता का स्वरूप रामदेव-रहस्य मे भी उल्लिखित है। श्री पोद्दार के अनुसार—"कृष्ण दिव्य आनन्द विग्रह है और राधा दिव्य प्रेम विग्रह है। वे महाभाव है, ये रस राज है। राधा ही लक्ष्मी, सीता, प्रभा एव रुक्मणी जान पड़ती है—इनमें कोई भी भेद नहीं है। जैसे चन्द्र-चन्द्रिका सूर्य और प्रभा एक दूसरे से सर्वथा अभिन्न है।"[3] जिस तरह अग्नि और उसकी ज्वाला--कस्तूरी और उसकी गंध अलग दिखायी देती है परन्तु वास्तव मे वह एक है। इस प्रकार राधा--कृष्ण दो नहीं अपितु एक ही हैं। "इस तरह दोनों एक रूप रहते हुए भी श्री कृष्ण की नित्य सिद्धा प्रिया श्री राधिका हैं। श्री राधिका प्रथमा शक्ति है, प्रथमा सिद्धि हैं, अत-

---

1- राधा का क्रम विकास—शशिभूषण दास गुप्त, पृ० 201

2- श्री स्कन्ध महापुराण संहिता—द्वितीय वैष्णव खण्ड, अध्याय 1, श्लोक 22

3- राधांक—(श्री राधा-कृष्ण का तात्विक स्वरूप-हनुमानप्रसाद पोद्दार) पृ० 151

एव सर्वश्रेष्ठा है, निष्कामा हैं, प्रेममयी हैं।"[1] "श्री राधा ही पार्वती, राधा ही दुर्गा और राधा ही "पराशक्ति" है। राधा ही रामेश्वरी नाम से विभूषित होती है और राधा ही कृपानिधान श्री भगवान का रस पाकर आदर्श शक्ति के रूप में अखिल विश्व की आकुलांत रूप से (सेवा) करने वाली मधुरिमामय जगन्माता है। अखिल विश्व ही उसके हृदय गर्भ में विश्राम ले रहा है। "राधा" ही ब्रह्म की वह प्रकृति शक्ति हैं, जो "सृजति जगपालति हरति रुप पाय कृपा निधान की, के रूप में विश्व की सृष्टि स्थिति और सहार करने वाली भी बनी हुई है, अखिल विश्व की "लीला" उस "लीलामयी" की ही (अपार) लीलामयी लीला है, वही इस ब्रह्माण्ड का शासन अपनी सत, रज और तम गुणमयी त्रिगुणात्मक प्रकृति त्रिशूल रूप "शासन दण्ड" से किया करती है।"[2] राधा भगवान की छाया शक्ति हैं और इसी कारण इनको योगमाया की भी सज्ञा दी गयी है, और यह प्रकृति देवी काएक स्वरूप--भेद भी हैं।

राधा का दार्शनिक स्वरूप

जीव गोस्वामी ने राधा के दार्शनिक स्वरूप का विवेचन किया है। ब्रज लीला के सुन्दर चित्रण मे कृष्ण का असंख्य गोपियो से सम्बन्ध दर्शाया गया है जिसमें राधा का भी वर्णन एक गोपी के रूप मे हुआ है। यूथेश्वरीगण में राधिका प्रमुख हैं जिनके यूथ की सखियां सर्व गुण मंडित और श्री कृष्ण के मन को विलास--विक्रम द्वारा आकर्षित करती है। रूप गोस्वामी रति-विश्लेषण के द्वारा राधिका की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते है। रति साधारण, समंजसा और समर्था तीन प्रकार की मानी गयी हैं। जो कृष्ण के दर्शन द्वारा ही उत्पन्न होती है और जिसका निदान संयोग इच्छा ही है— वह साधारण रति है। राधा को छोडकर अन्य किसी मे यह भाव प्रतीत नही होता है इसी कारण श्री राधिका 'कान्ता शिरोमणी" कहलाती हैं। राधा मधुर रस का रागात्मक प्रतीक हैं। सखियां इस राधा का कायव्यूह स्वरूप हैं और उन सखियो की अनुगता मंजरी गण सेवा दासी है। श्री राधा ही विचित्र अवस्थान के अन्दर इस कृष्ण लीला में विचित्र अवलम्बन ग्रहण करती है। श्री शशिभूषणदास के शब्दों मे वृन्दावन के गोस्वामियों के आविर्भाव के पहले ही प्रधान गोपिन के रूप में

1- वही, पृ० 111–112
2- वही, पृ० 14

राधा-वैष्णव साहित्य में सुप्रतिष्ठित हो चुकी थी ।[1]

राधा का यौगिक स्वरूप

राधा श्री हरि कृपा रूपी गुप्त-गंगा की सदा बहने वाली धारा है । इसलिए उसे गुप्ती, गोपनीया अथवा गोपी कहते हैं । इसका उत्तम स्थान जीव मात्र का हृदय है । यह आह्लादिनी शक्ति हृदय-कमल पर ही प्रतिष्ठित है । सच्चिदानन्द से उसकी जोड़ी मिली हुई है । वहां पृथकत्व सभव नहीं है । श्री हितरूपलाल जी ने राधा तत्व के स्वरूप का विवेचन शरीर का रूपक बांध कर इस तरह प्रस्तुत किया है– 'इस पुरुष का शरीर शुद्ध प्रेम है और इसके इन्द्रीय मन, तथा आत्मा भी शुद्ध प्रेम ही है । इस पुरुष का शरीर ही वृन्दावनधाम है । इन्द्रियां सखी परिकर है, मन श्रीकृष्ण है और आत्मा श्रीराधा है । इस प्रकार चारों मिलकर एक ही हित पुरुष है ।'[2] हिन्दी साहित्य में राधा के यौगिक स्वरूप को और अधिक उज्ज्वल करने के लिए किशोरीशरण ने पुस्तक में एक स्थल पर सुन्दर चित्रण किया है– 'श्रुतियो में अगोचर' श्री ब्रह्मा, शिव, शुक और सनकादिकों से अलक्ष्य जो 'रस' कभी नन्दनंदन और वृषभानुनन्दिनी नाम से बृज में अवतीर्ण हुआ था, वह परात्पर रस ही इस अभिनव धारा का परमोपास्य है, जो कि प्रकृत्या क्रीड़ाभित होने के कारण क्रीड़ार्थ अपनी प्राणात्मा को राधा, मन को श्री कृष्ण, देह को वृन्दावन में ही अनादि काल से नित्य क्रीड़ा किया करता है ।[3]

राधा का ज्योतिषशास्त्र में स्वरूप

राधा के चरित्र को ज्योतिषशास्त्र से जोडते हुए योगेशचन्द्र ने कहा है– 'राधा नाम पुराना था और विशाखा का नामान्तर था । कृष्ण में विशाखा, अनुराधा आदि नक्षत्रों का नाम है । राधा के बाद अनुराधा का नाम है । अतएव विशाखा नाम राधा है । 'अथर्ववेद' में 'राधा' विशाखे' यह स्पष्ट कथन है । विशाखा नाम का यही कारण है । इस नक्षत्र में शारद विष्णुव होता था और वर्ण दो भागों में बट जाता था । यह ईसा पूर्व २५०० सौ की बात है । शायद इसके पहले नक्षत्र का नाम राधा था । राधा का अर्थ है सिद्धि । महाभारत मे कर्ण धातृ-माता का नाम भी राधा है, और कर्ण 'राधेय' के नाम से सम्बोधित होते थे । 'अमरकोष' में श्री राधा का

1- श्री कृष्णांक (गीता प्रेस, गोरखपुर), पृ० 483

2- श्री हितराधा वल्लभीय– साहित्य रत्नावली की 'भूमिका'

3- अमरकोष : निर्णय सागर प्रेस बम्बई पृ० 633

नाम विशाखा आया है– राधा विशाखा पुष्येतु– सिध्यतिष्यों श्रविष्ठया।[1] प्राचीन समय में लोग इस बात से सहमत थे कि तारों का तारापन सूर्य की रोशनी से ही है। गोप कृष्ण है जो रश्मि है और गोपी तारा है। जिस प्रकार शशि के चारो ओर मडलाकार में तारे विद्यमान हैं, ठीक उसी भांति कृष्ण रास के मध्य में है और गोपिका मंडलाकार मे है। चन्द्रमा स्त्रीलिंग होने के कारण वह राधा की प्रतिनायिका माना गया है। अमावस की रात्रि को चन्द्र सूर्य मिलते हैं जिसका स्पष्ट अभिप्राय है कि गुप्त रूप से कृष्ण-चन्द्रावती कुंज मे जाते हैं। वृषभानु वृष राशिस्थ भानु रश्मि है इसलिए राधा को वृषभानु की कन्या बताया गया है। इस प्रकार ज्योतिष की घटनाए श्री कृष्ण की 'रासलीला' पर बिल्कुल ठीक घटती है और राधा 'रासेश्वरी' का रूप धारण कर लेती है। अतः प्रतीत होता है कि वैदिक युग के विष्णु का सम्बन्ध सूर्य के साथ था और ज्योतिष तत्व का पौराणिक युग में वर्णित कृष्ण लीला पर यथेष्ठ प्रभाव था।

राधा का वैज्ञानिक स्वरूप

वैदिक सिद्धान्तानुसार चन्द्रमा, पृथ्वी एवं सूर्य ये तीनों मण्डल निरूक्त कृष्ण के ही रूप में यथेष्ठ सिद्ध होते हैं। वेद मे पृथ्वी को कृष्ण को पृथ्वी की काली किरणों के समूह को अन्धकार की संज्ञा दी गयी है। जहां तक सूर्य का प्रकाश है, उसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है, उसकी सीमा से बाहर अनन्त प्रकाश में "अनिरूक्त कृष्ण" सोम अथवा आप है। "वह कृष्ण है और सूर्य प्रकाश की प्रतिमा राधा है। राध् धातु का अर्थ है, 'सिद्धि'। सूर्य प्रकाश मे ही सब कार्य सिद्ध होते हैं—अतः राधा नाम वहां अन्वर्थ (सार्थक) है। कृष्ण श्याम तेज है, राधा गौर तेज है, कृष्ण के अंक मे (गोदी मे) अर्थात् श्याम तेजोमय मडल के बीच में राधा विराजित है।[2] निविड़ अन्धकार में बिना प्रकाश के अन्धकार की प्रत्यक्षानुभूति ही नही हो सकती। बिना प्रकाश के नेत्र रश्मि कार्यविहीन होती है। अतः 'सिद्ध हुआ" कि गौर तेज और श्याम तेज — राधा और कृष्ण अन्योन्य आलिंगत रूप में ही सदा रहते हैं, कभी कृष्ण के अंक मे राधा छिपी हुई है, कभी राधा के आंचल मे कृष्ण दुबक गये हैं। इसी से दोनों

1- अमरकोष (निर्णय सागर प्रेस) बम्बई), पृ० 188

2- पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ (बृज साहित्य मंडल, मथुरा) पृ० 632

एक ही रूप में माने जाते है। एक ही ज्योति के दो विकास है और एक के विना दूसरे की उपासना निंदित मानी गयी है।"[1]

राधा का चरित्र विकास

राधा का चरित्र विकास गत हजारों वर्षों में रचित रचनाओं के माध्यम से हुआ है। इस विकास क्रम को हम वैदिक वाङ्मय से आज तक क्रमिक रूप में देख सकते हैं :—

वैदिक वाङ्मय

वेदों में प्रयुक्त 'श्री' शब्द को स्पष्ट करते हुए अनेक विद्वानों ने अपनी व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय के २२ वें मन्त्र में कहा गया है —

"श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे।
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनो व्यात्तम्।"[2]

यहां श्री का तात्पर्य राधा ही है। विष्णु की दो पत्नियाँ हैं—एक राधा और दूसरी है लक्ष्मी। श्री रुक्मणी जी को लक्ष्मी का अवतार और श्री राधा जी को श्रीजी का अवतार कहा गया है। वेद में भगवान के चार अंश बताये गये हैं जिनमें केवल एक ही से सकल ब्रह्माण्ड रचित है। इसको भगवान का प्रकृति पुरुषात्मक स्वरूप कहते हैं। ऋग्वेद आश्वलायनि शाखा परिशिष्ट श्रुतिः में कहा गया है—

'राधया माधवो देवो माधवेनेव राधिका। विभ्राजन्ते जनेषुवा।"[3]

राधा के हेतु से माधव तथा माधव से ही राधिका विशेष शोभायमान होते हैं। श्री राधिकोपनिषद श्री राधिकाजी की महिमा तथा उनके स्वरूप को बताने वाला ऋग वेद का एक ग्रंथ है। यह गद्य में लिखा हुआ है तथा इसमें राधा श्री कृष्ण की परमान्तरगभूता आदिनी शक्ति बतायी गयी है।

1- पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ (श्री कृष्णावतार पर वैज्ञानिक दृष्टि-गिरधर शर्मा चतुर्वेदी), पृ० 633
2- शुक्लयजुर्वेद 31-32
3- हरिव्यास देव कृत वेदान्त कामधेनु की टीका (सिद्धान्त रत्नावली) से उद्धृत

पुराण साहित्य में राधा का स्वरूप

पुराण साहित्य में राधा का अपेक्षित चरित्रांकन हुआ है। इनमें से उल्लेखनीय पुराण ग्रन्थ हैं—

(क) ब्रह्म पुराण

संस्कृत में "प्रिया" राधा को भी कहा जाता है। उपनिषदों में और पुराणों में इसका प्रमाण मिलता है। इसी के आधार पर बृज भाषा में राधा को "प्यारी" कहा गया है। ब्रह्म पुराण मे वर्णित है कि—

"सह रामेण मधुर मतीव वनिता प्रियम।
जगो कमलापादोसो नाम तत्र कृत व्रतः॥[1]

(ख) पद्म पुराण

राधा कृष्ण सबसे परे और सर्वरूप है। राधा आद्या प्रकृति तथा कृष्ण की वल्लभा हैं। दुर्गा आदि त्रिगुणमयी देवियां उसकी कला के करोड वें अंश को धारण करती है और उनकी चरण की धूलि के स्पर्श मात्र से करोड़ों विष्णु उत्पन्न होते है—पद्म पुराण मे राधा कुण्ड के महात्म्य का वर्णन है। इस पुराण की मान्यता है कि राधा के समान न कोई स्त्री है और न कृष्ण के समान कोई पुरुष है। राधा कृष्ण की युगल मूर्ति आदर्श नायिका-नायक की प्रतिमूर्ति है।

(ग) विष्णु पुराण

इस पुराण मे श्री राधाजी की प्रणय लीलाओं का स्पष्ट रूप से उल्लेख हुआ है। किन्तु राधा का नाम नही मिलता है। "गोपियो" की प्रणय लीला के वर्णन मे एक विशेष प्रेम-पात्र सखी का उल्लेख है।[2] इस उल्लेख को ही आचार्यों ने श्री राधाजी का सांकेतिक उल्लेख बताया है। "विष्णु पुराण के अनुसार विष्णु-शक्ति परा है क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति अपरा है और कर्म नाम की तीसरी शक्ति अविद्या कहलाती है।"[3] उसमे

1- ब्रह्म पुराण, अध्याय 81, श्लोक 16

2- विष्णु पुराण, पचम अश—अध्याय 13, पृ० 41

3- वही, षष्ठ अश—सातवां अध्याय

"चिच्छक्ति" को एक एवं अखण्ड तत्व होने पर भी निरूपा कहा गया है। सन्देश में "सन्निनी" चिदेश में "सम्वित" एवं आनन्दाश मे 'श्राह्लादिनी" कहा गया है।

(घ) श्रीमद्भागवत महापुराण

इस पुराण में किसी भी स्थल पर राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु फिर भी विद्वान् राधा की कल्पना कितने ही स्थलों पर करते हैं। श्रीमद्भागवत जैसे पुराण में जहां श्रीकृष्ण के चरित्र का इतना विशद् चित्रण है वहां राधा का स्पष्ट रूप से उल्लेख न होना राधा की प्राचीनता के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करता है। विद्वानों का विचार है कि शुकदेवजी ने राधा के गोपनीय रहस्य को प्रस्तुत करना उचित नहीं समझा। इस हेतु श्री राधा तत्व प्रकट प्रतीत न होते हुए भी निगूढ़ भाव से समस्त श्रीमद्भागवत मे अन्तर्निहित है।

(ङ) मत्स्य पुराण

मत्स्य पुराण में यह वर्णन मिलता है कि रुक्मणी द्वारका में और राधिकाजी वृन्दावन में विराजमान हैं।

(च) ब्रह्माण्ड पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण में राधिका को नित्य कृष्ण की आत्मा और कृष्ण को निश्चय राधिका की आत्मा बताया गया है—

"राधा कृष्णात्मिका नित्य कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।"

इस पुराण में कृष्ण ने अपने मुख से कहा है कि जिव्हा में, नेत्र में, हृदय में तथा सर्व अङ्गो में व्यापिनी राधा की आराधना करता हूँ।

(छ) देवी भागवत

श्री देवी भागवत पुराण में राधा की उपासना तथा पूजा पद्धति का विशेष विवरण मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि उस युग में राधा को श्रीकृष्ण का साहचर्य प्राप्त हो गया था। इसमें राधा को मूल प्रकृति के रूप में ही माना गया है। श्रीकृष्ण की भांति ही राधा भी परमशक्ति की अवतार मानी गयी है। आद्या प्रकृति के पांच स्वरूप हैं—(1) दुर्गा (2) राधा (3) लक्ष्मी (4) सरस्वती (5) सरस्वती। राधा पंच प्राण की अधिष्ठात्री देवी हैं जो कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। वे सब

प्रकृति देवियों से अधिक सुन्दरी एवं सर्वश्रेष्ठ हैं। 'वे सबकी आत्मा स्वरूप है। वे सब विषयों में ही निश्चेष्ट और अहंकार रहित है तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए ही केवल शरीर धारण करती है।"[1]

(ज) आदि पुराण

आदि पुराण में भी राधा का उल्लेख मिलता है। इसमें श्रीकृष्ण की सखियों के यूथ की सख्या तीन सौ बताई गयी है।"[2]श्री राधिका जी की बहुत सी सुन्दर सखिया है जो सभी पवित्र हैं तथा देवता उनको परम पदार्थ की सज्ञा देते हैं। श्री राधिका की प्रधान सखियां आठ हैं। श्रीमती राधिका की कृत्रिमा भनेली) आठवीं सखी है। राधिकाजी के ये आठ सखियां यूथों मे उत्तम प्रतिष्ठा वाली है।

इस प्रकार विभिन्न पौराणिक उल्लेखो से स्पष्ट है कि राधा का न तो जन्म होता है, न मृत्यु होती है। कृष्ण की इच्छा से ही समय-समय पर उनका आविर्भाव तथा तिरोभाव होता है। हरि के समान ही वे सदा नित्य तथा सत्य रूपा हैं। वे बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी तथा भक्तों की विपत्ति को हरने वाली दुर्गा हैं। वे हिमालय की कन्या के रूप में अवतीर्ण होने वाली पार्वती भी कही जाती है।

विभिन्न भक्ति सम्प्रदायों में राधा का स्वरूप

विभिन्न भक्ति सम्प्रदायो में राधा का निरूपण साम्प्रदायिक मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में हुआ है।

रामानुज सम्प्रदाय

भक्ति के प्रसार का दृढ आधार रामानुजाचार्य ने प्रस्तुत किया। रामानुज ने लक्ष्मी विष्णु और उनके अवतारो की अलग-अलग अथवा युगल रूप से उपासना की थी। रामानुज का तीन गुणों से युक्त सिद्धान्त 'भोक्ता योग्यं प्रेरितार च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविध ब्रह्म एतद्।"[3] पर आधारित है। ये शरीर आत्मा और ईश्वर तीनो की सृष्टि मानते हैं अर्थात् अद्वैत की सत्ता स्वीकार करते है। ईश, असीम और प्राज्ञ है। जीव को विभु

1- देवी भागवत-नवम् स्कन्ध, प्रथम अध्याय, श्लोक 44 से 50

2- आदि पुराण-अध्याय 10, श्लोक 4

3- श्वेताश्वतरोपनिषद्, 1-12

और युगल-नारायण के चरणों में आत्म समर्पण करने से शान्ति मिलती है।

वल्लभ सम्प्रदाय

वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को पूर्ण आनन्द स्वरूप पुरुषोत्तम पर ब्रह्म माना गया है। ये ब्रह्म के अनन्त अवयव हैं तथा सर्वत्र व्याप्त रहते हुए भी उनकी स्थिति है। यह अविभक्त और अनादि है। इन अनन्त शक्तियों के विविध रूप, गुण और नाम होते हैं। ये ही श्री, स्वामिनी, चन्द्रावली, राधा और यमुना प्रभृति हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय

निम्बार्क ने द्वैताद्वैत का प्रचार किया। इसमें अद्वैत और द्वैत दोनों का समान रूप से महत्व है। निम्बार्क के मतानुसार चित्, अचित् और ईश्वर तीन परम तत्व है जिन्हें भोक्ता, भोग्य और नियन्ता भी कहा गया है। जीव और जगत की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। कृष्ण के साथ राधा की महानता इस सम्प्रदाय की विशेषता है। राधा कृष्ण के साथ सब स्वर्गों से परे गोलोक में निवास करती है। कृष्ण पर ब्रह्म हैं उन्हीं से राधा और गोपिकाओं का आविर्भाव हुआ है। कृष्ण ऐश्वर्य तथा माधुर्य रूप की अधिष्ठात्री "रमा" 'लक्ष्मी" या "भू" शक्ति है और प्रेम तथा माधुर्य रूप की अधिष्ठात्री राधा है। राधा-कृष्ण की ह्लादिनी तथा प्राणेश्वरी है जिनकी शक्ति से गोपियाँ, महिषियाँ लक्ष्मी तथा हजारों सखियां उत्पन्न होकर उनकी सेवा करती हैं।

चैतन्य सम्प्रदाय

यह बृहद वैष्णव सम्प्रदाय को चलाने वाले श्री चैतन्य प्रभु थे। चैतन्य ने राधा को प्रमुख स्थान दिया। चैतन्य ने राधा-कृष्ण की युगल भक्ति तथा गुणगान किया। इनके कथनानुसार पर ब्रह्म श्री कृष्ण का आदि अवतार हैं जो वासुदेव भी हैं। गोपियां प्रेम और आनन्द की शक्ति स्वरूपा है और "राधा" महाभाव स्वरूपा है।

हरिदासी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक जैसा कि नाम से ही स्पष्ट ज्ञात होता है स्वामी हरिदास जी थे। यह सम्प्रदाय भक्ति का एक साधन मार्ग है। हरिदासी सम्प्रदाय को सखी सम्प्रदाय की भी संज्ञा दी गयी है। यह सम्प्रदाय वास्तव मे दार्शनिक गूढ़ता से दूर है और इसमें रसोपासना को प्रधानता दी गयी है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय

अष्ट छाप कवियो के समय मे ही युगल उपासना का राधा वल्लभ सम्प्रदाय प्रचलित था। जिसके प्रवर्तक स्वामी हितहरिवंश थे। हित हरिवंश के यहां राधा कृष्ण केलि की खवासी अथवा परिचर्या करने का ही आदेश था। इस सम्प्रदाय मे राधाकृष्ण की कुंज लीला के आनन्द को 'परम रस माधुरी भार" कहा है और श्रीकृष्ण की अपेक्षा राधा की भक्ति को विशेष महत्व दिया है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय का मूलाधार "राधा-प्रेम" हैं। इसमे राधा की उपासना के बिना कृष्ण की आराधना बेकार है। राधा स्वयं सर्वतन्त्र अधिष्ठातृ देवी है। राधा ही इष्ट देवी है, आराध्य देवी या उपास्य हैं। इस सम्प्रदाय मे राधा की मूर्ति स्थापित न होकर गद्दी सेवा ही प्रमुख मानी गयी है।

रीति काव्य में राधा का स्वरूप

रीतिकालीन कवियों ने तीन प्रकार के ग्रन्थो की रचना की है–

१- नाना प्रकार की प्रेम-क्रीड़ाओं को रूपायित करने वाले कामशास्त्र ग्रंथ

२- उक्ति-वैचित्र्य का विवेचन करने वाले अलकार शास्त्रीय ग्रन्थ

३- नायक नायिकाओं के भेद-प्रभेदों और स्वभावों का विवेचन करने वाले रस शास्त्रीय ग्रन्थ।[1]

शृङ्गार रस के अन्तर्गत प्रेम-भक्ति की कविता रची गयी हैं। प्रेम और भक्ति के नायक कृष्ण हैं। इसी कारण शृङ्गार रस की कविता में कृष्ण नायक और राधिका नायिका है। डा० नगेन्द्र रीतिकालीन धार्मिकता और भक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध मे लिखते हैं— 'वास्तव मे यह भक्ति भी उनकी शृंगारिकता का ही एक अङ्ग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब वे लोग घबरा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्म-भीरू मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच तथा दूसरी ओर मानसिक शरण-भूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। तभी तो ये किसी न किसी तरह उसका आंचल पकड़े हुए थे। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति-भावना मे हीन नहीं है –हो ही नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति के लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए भी उनके विलास-जर्जर

1- हिन्दी साहित्य – डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० 299

मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति में अनास्था प्रकट करते या उसका सैद्धान्तिक निरोध करते। इसलिए रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य में भक्ति का आभास अनिवार्यतः वर्तमान है और नायक-नायिका के लिए बार-बार 'हरि' और 'राधिका' शब्दों का प्रयोग किया गया है।"[1] डा० शिवलाल जोशी का अभिमत है कि "रीतिकालीन साहित्य में हमें जो मांसलता नग्नता तथा विलास प्रियता मिलती है उसे परीक्षान्मुख कदापि नहीं कहा जा सकता केवल राम-सीता अथवा कृष्ण राधिका के नामों के उल्लेख मात्र से रीतिकालीन साहित्य को परीक्षान्मुख नही कहा जा सकता। उसकी ऐन्द्रियता स्पष्ट है।"[2] रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों की प्रवृत्ति एक समान ही ज्ञात होती है। राधा के स्वरूप का वर्णन करने वाले कवियों मे बिहारी, पद्माकर, केशव, देव, मतिराम के नाम उल्लेखनीय हैं—

बिहारी

बिहारी भक्त न होते हुए भी भक्ति भावना से ओत-प्रोत रस सिद्ध कवि थे। इनका काव्य श्रृंगार चेतना प्रधान है। इनके काव्य मे सामान्यतः कृष्ण और राधा साधारण नायक-नायिका के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। बिहारी ने राधा की वन्दना अपनी "सतसई" के शुरू मे ही मंगलाचरण के रूप में की है—

> "मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोई।
> जा तन की झाईं परैं, स्यामु हरित-दुति होई।"[3]

वे एक दोहे मे कृष्ण और राधा की जोडी के चिरजीवी रहने की कामना करते हैं क्योंकि उन दोनो मे कोई घटकर नही है। कवि के शब्दों मे—

> "चिर जीवो जोरी, जुरे क्यों न सनेह गभीर।
> को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।"[4]

1- रीतिकाव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र, पृ० 165
2- रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—डा. शिवलाल जोशी पृ० 120
3- बिहारी रत्नाकर-दोहा 1
4- वही, दोहा 677

पद्माकर

पद्माकर भट्ट के काव्य में विभिन्न विषयों का वर्णन उपलब्ध है। इनका काव्य भक्ति भावना से भी ओत-प्रोत है। उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रणय संबध को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

> "मन-मोहन तन-घन-साधन, रमनि राधिका मोर।
> श्री राधा मुखचंद को गोकुलचन्द चकोर।"[1]

केशव

आचार्य केशवदास मूलत: रामकाव्य के रचयिता होते हुए भी उन्होंने कृष्ण-राधा का रूपांकन किया है। यथा—

> "महि मोहिति मोहि सकै न सखी चपला चल चित्र बखानत है।
> रति की रति क्यों हुंन कान करै द्युति नंद कला द्यति जानत है॥
> कहि केशव और कि बात कहा रमणीय रमा हूंन मानत है।
> वृषभानु सुता हित मत्त मनोहर औरहि डीठन आनत है।[2]

देव

महाकवि देव ने भी कृष्ण परक काव्यों की रचना की है। देव बृजाधीश श्री कृष्णचन्द्र आनंककद एव राजेश्वरी के उपासक थे। इसलिए उन्होंने अपने काव्य का सारा शृंगार वृजाधीश को ही समर्पित कर दिया है। यथा—

> "जबते कुंवर कान रावरी कला विधान।
> बैठी वह बकति विलोकति विकानी-सी।"[3]

राधिका कुंज विहारी रस मे मग्न है। श्यामा-श्याम की पाग का गुणगान करती है और श्याम-श्यामा की साड़ी का। यथा—

> "आपसु में रस मे रह सं, विहसे बन राधिका कुंज बिहारी।
> स्यामा सराहति श्याम की पागहि स्याम सराहत श्यामा की
> सारी।"[4]

1- पद्माकर पचामृत-विश्वनाथप्रसाद मिश्र, दोहा 288

2- रसिक प्रिया, सवैया 29

3- हिन्दी नवरत्न मिश्र बन्धु पृ० 325

4- देव दर्शन, अष्टजाम 6 हरदयालुसिंह, पृ० 98

मतिराम

मतिराम अपने समकालीन कवियों की भांति ही वैष्णव भक्त थे। इनके ग्रंथों की उपलब्धि राधा--कृष्ण की स्तुति है। डा० महेन्द्रकुमार का अभिमत है कि–'वास्तव में वे कृष्ण--भक्त वैष्णव ही थे और उनकी विचारधारा पर मुख्यतः आचार्य वल्लभ के "शुद्धाद्वैत" का प्रभाव रहा है पर उन्होंने वल्लभ सम्प्रदाय का कट्टरता के साथ अनुसरण न कर अन्य अन्य सम्प्रदायों से भी प्रभाव ग्रहण किया है।"[1]

मतिराम ने "सतसई" मे राधा की वन्दना इस तरह की है—

> "मो मन--तम--तोमहिं हरौ राधा को मुख चन्द।
> चढ़ै जाहि लखि सिन्धु लौ नन्द–नन्दन–आनन्द॥"[2]

किन्हीं स्थलों पर मतिराम ने कृष्ण से राधा की वरीयता भी स्वीकारी है। यथा—

> "ब्रज ठकुराइनि राधिका ठाकुर किए प्रकास।
> ते मन--मोहन हरि गए अब दासी के दास॥"[3]

× × ×

आधुनिक काव्य में राधा का स्वरूप

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का राधा--कृष्ण--स्वरूप चित्रण अष्टछाप कवियों की भावना--पद्धति से अनुप्रेरित है। राधा की छवि, रास, झूलना, शोभा, वसन्त एवं फाग के वैसे वर्णन इनके काव्यों में प्राप्त होते हैं। उनका कथन है—"राधिका की छटा के प्रकाश से पापी भी प्रेमी बन जाते है।"[4] "घनश्याम के सीधे पार्श्व में चन्द्रावली और वाम पार्श्व में राधा सुशोभित हैं।"[5] यह अष्ट सखियों के साथ निवास करती है इसीलिए कृष्ण के

1- मतिराम कवि और आचार्य—डा० महेन्द्रकुमार, पृ० 155
2- मतिराम सतसई–दोहा–1
3- वही, दोहा–395
4- भारतेन्दु ग्रन्थावली–दूसरा खण्ड, पृ० 5
5- वही, पृ० 5

चरणों के निकट नवकोन का चिन्ह है।"[1] 'राधा वृज को प्रकाशित करने वाली है।"[2] राधा दिन--रात कृष्ण का स्मरण करती रहती हैं। उस वृन्दावन देवी के चरणों की सेवा अखिल विश्वनायक पुरुषोत्तम तथा देवों के देव कृष्ण भी करते हैं। वह चन्द्रमुखी बड़ी करुणामयी और भव बाधा को दूर करने वाली हैं। वृज के दो मणि–दीपों में से वह एक हैं।

जगन्नाथ रत्नाकर

जगन्नाथ दास रत्नाकार ने 'उद्धव शतक" में भ्रमर गीत प्रसग के अन्तर्गत निर्गुण ब्रह्म का खण्डन कर सगुण की भक्ति का प्रतिपादन किया है। रत्नाकर की गोपियों में तर्क शक्ति है और कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम भाव है। "उद्धव शतक" में कृष्ण--राधा के प्रति व्याकुल दिखायी पड़ते हैं। कवि के अनुसार "राधा मुख का ध्यान करते ही उनका विरहाग्नि से उर्ध्व श्वास चलने लगता है, विचार हार जाते है, धैर्य खो जाता है और मन डूबने लगता है।"[3] रत्नाकर ने अपनी राधा को उद्धव से दूर ही रखना उचित समझा। गोपिकाएं कृष्ण विरह मे बुरी तरह से फस गयी थीं तो उस स्थिति मे राधा की विरह दशा क्या होती ? परन्तु उद्धव के जाते समय उनका प्रेम उमड़ आता है और वे स्वय को नही रोक पाती। वे कृष्ण के पास और कुछ न भेज पाने की स्थिति में उनकी प्रिय वशी ही उद्धव के साथ भेज देती हैं। यथा—

> 'धाई जित-जिन तें बिदाई–हेत उद्धव की
> कीरति कुमारी सुखारी दई बासुरी।"[4]

मैथिलीशरण गुप्त

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने राधा की मनोवृत्तियों का सुन्दर चित्रण किया है। "द्वापर" में राधा का चरित्र व्यापक रूप में उभरा है। द्वापर की राधा सब धर्मों को छोड़ कर केवल कृष्ण की ही शरण मे आई है।[5] "कृष्ण के मुरली वादन को श्रवण कर उनका अन्तः करण प्रमुदित

1- वही, 14 वां खण्ड, दोहा 5
2- वही, दूसरा खण्ड, पृ० 5 दोहा-6
3- उद्धव शतक, छन्द 11
4- वही, छन्द 9
5- द्वापर–मैथिलीशरण गुप्त, पृ० 13

हो जाता है।"[1] "वे कृष्ण से अपने वाम कपोल एवं अवतंस के चुम्बन की कामना करती है।"[2] राधिका यशोदा के आंचल में मुंह छिपाये विरहणी के रूप में भी हमारे सामने आती है।"[3] गोपिकाएं कहती हैं कि—"यदि कृष्ण राधा बन जाते तो उद्धव तुम मधुवन से लौट कर मधुपुर ही जाते, परन्तु राधा ही हरि बन गयी हैं।"[4]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

"हरिऔध" के 'प्रिय प्रवास" महा काव्य में राधा का लोक सेविका रूप चित्रित हुआ है। "प्रिय प्रवास" की राधा आधुनिक युग की लोक सेविका एवं भारत भूमि की अनुपम नारी रत्न हैं। "प्रिय प्रवास" की राधा साक्षात् प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं। हरिऔध जी ने राधा के चरित्र का बहुमुखी चित्रण किया है।" सौन्दर्य रसिका राधा के हृदय में सौन्दर्यशाली कृष्ण के प्रति आकर्षण और फिर प्रणय का सचार होने लगा। राधा की कामना है कि कृष्ण सविधि उन्हें वरें।"[5] उद्धव के वृज में पहुंचने पर व्रजवासी उनसे पूछते हैं कि—"शान्ता, धीरा, मधुर हृदया, प्रेम रूपा, रसज्ञा, प्रणय-प्रतिमा, मोह-मग्ना राधिका को कैसे कृष्ण भूल गये।"[6] 'प्रिय प्रवास" की राधिका मानवी और त्यागमयी देवी है। वे आदर्श नारी और समाज सेविका है। हरिऔध की राधा जितनी गंभीर प्रेमिका है उतनी ही जीवन और जगत के प्रति अद्भुत त्याग एव उदात्त भावनाओं से अभिमण्डित हैं। सम्पूर्ण काव्य के सूक्ष्म अध्ययन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि प्रिय प्रवास की राधा न जयदेव की विलासिनी राधा है, न विद्यापति की यौवनोन्मत्त मुग्धा नायिका राधा, न चण्डीदास की परकीया नायिका राधा, न सूर की मर्यादा सन्तुलित राधा, न नन्ददास की तार्किक राधा, न रीति-कालीन कवियों की विलासिनी राधा, अपितु वे आधुनिक युग की नवीनतम भावनाओं की प्रतीक विशुद्ध लोक-देश सेविका राधा हैं।

1- द्वापर—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० 13
2- वही, पृ० 15
3- वही, पृ० 138
4- वही पृ० 176
5- प्रिय प्रवास—पृष्ठ 41–35
6- वही, पृ० 221

आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा में राधा का स्वरूप

आधुनिक काल में अनेकानेक उच्चकोटि के हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की सरचना हुई है। इनमें से ऐसे अनेक प्रबन्ध काव्य ग्रन्थ हैं जिनमें राधा के स्वरूप का अंकन हुआ है। प्रबन्ध काव्य की रचना दृष्टि में परम्परागत मान्यताओं को निभाया गया है। "प्राय: सभी की कथा इतिहास प्रसिद्ध पात्रो एवं घटनाओं पर आधारित है, किन्तु नायक, सर्ग तथा छंद विधान की दृष्टि से परम्परा के निर्वाह की अपेक्षा कवियों ने युगानुरूप तथा भावाभिव्यक्ति के अनुरूप स्वच्छन्दता से काम लिया है एवं पुराने विषयो को लेते हुए भी बचे युग की चेतना एव जीवन सत्यो को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल को भी प्रबन्ध-काव्यों का विषय बनाया गया हैं।"[1] राधा के चरित्र विकास की दृष्टि से निम्नलिखित हिन्दी प्रबन्ध काव्य उल्लेखनीय हैं—

कृष्णायन

'कृष्णायन" महा काव्य के रचयिता द्वारकाप्रसाद मिश्र थे। यह दोहा चौपाई के क्रम में सात काण्डों में विभाजित है, अवधि भाषा का यह महा काव्य है। इसके चरित नायक भगवान श्री कृष्ण है।"[2] मिश्र जी ने गोपी चीर हरण जैसी लीलाओं में समाज सुधारक कृष्ण का चित्र अंकित किया है। डा॰ धीरेन्द्र वर्मा और डा॰ बाबूराम सक्सेना मिश्र जी की स्वकीया राधा के संबंध में लिखते है" राधा को अवश्य ही लेखक ने कृष्ण को कान्ता कामिनी माना है और भक्ति का अवतार भी। राधा को प्रथम बार देखने पर कवि ने यह कह कर

"जनु वछु क्षीर-सिन्धु सुधी आयी।
औचक मोहित भये कन्हाई॥

श्री कृष्ण के मन में क्षीर सागर की यह पूर्व स्मृति जाग्रत कर राधा को परकीया होने से बचाया है। उनका विवाह नहीं हुआ। तब भी दोनों की रासलीला और प्रेमलीला प्रति रात्रि वृन्दावन और गोकुल में

1- आधुनिक हिन्दी साहित्य (1947-62) डा॰ रामगोपालसिंह चौहान, पृ॰ 127

2- हिन्दी साहित्य में राधा-डा॰ द्वारकाप्रसाद मिश्र, पृ॰ 549

होता है, ऐसा भान कवि की प्रतिभा को हुआ है।"[1] राधा के चरित्र का वर्णन मिश्र जी ने सामान्यतः उसी प्रकार किया है जैसे सूरदास जी ने किया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मिश्रजी सूरदास की राधा से प्रभावित थे। अन्तर केवल इतना ही है कि उन्होंने पदों में रचना न कर दोहा–चौपाइयों में उन्ही भावों को सजाया है। राधा कृष्ण के प्रथम मिलन को कवि ने सूरदास की भांति ही प्रस्तुत किया है। यथा—

'एक दिवस खेलत व्रज खोरी, देखी श्याम राधिका भोरी।
जनु कछु क्षीर सिन्धु आयी, औचक मोहित भये कन्हाई ।।
पूछत श्याम "कहा तुम नामा, को तुव पिता ? कवन तुव ग्रामा ?
पहिले कवहु न परी लखायी, आजु कहां व्रज खेलन आयी ?"[2]

"इस तरह प्रथम मिलन के बाद ही राधिका वियोग से विह्वल होने लगती है।"[3] मिश्र जी ने नवेली राधा का नवल रूप वर्णन भी किया है। नदराय इधर ढूंढते हुए आये और 'राधा–माधव'' कह कर पुकारने लगे। कृष्ण ने कहा बादल घिर आये। इन्होंने मुझे कुंजों में छिपा लिया। स्वयमेव भीजकर मुझे बचा लिया। यह सुनकर राधा प्रसन्न होने लगी और वह कृष्ण के साथ महरि के घर चली आई। "महरि उनका शृंगार करती है और वह उसके पास तिल, मेवा, चावल, पतासे आदि रख पुनः हरि के साथ खेलने की अनुमति दे देती है।"[4] राधा कृष्ण के साथ खेलती हैं। मिश्र जी ने अवतरण खण्ड मे कृष्ण के अवतरण का हेतु ही नही राधा के अवतरित होने का भी कारण बतलाया है। वे व्रज में भक्ति रूप धारण कर दृगवारि से प्रेम–विटप को खीचने के लिए आई है। "गीता काण्ड मे पाण्डवों के शिविर को छोड़कर व्रज जनो के साथ जन–वत्सल कृष्ण बसते है। वहां राधा ही नही सब सुखी है।"[5] राधिका के समान कृष्ण भी कृत कार्य नही है। "कृष्ण भयकर युद्ध क्षेत्र में पापियों को जड़ से नष्ट नही कर सके परन्तु राधा ने कृष्ण के प्रेम को सीच कर बड़ा कर दिया।"[6]

1- कृष्णायन की भूमिका, पृ० 8
2- कृष्णायन, पृ० 54
3- वही पृ० 55
4- हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० 551
5- कृष्णायन, पृ० 523
6- वही, पृ० 526

राधा–महाकाव्य

"राधा" महाकाव्य की रचना दाऊदयाल गुप्त ने की है। 'राधा' प्रबन्ध-काव्य में राधा का चरित्र-चित्रण करने में गुप्तजी ने 'गर्ग संहिता' एव 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' आदि का आश्रय लिया है। गर्ग संहिता के आधार पर ही उन्होंने मुख्यतः राधा का चरित्र-चित्रण किया है। विरह के उपरात मिलत कराना 'राधा महाकाव्य' की अपनी अपूर्व विशेषता है। उनके कृष्ण और राधा, तुलसी के राम की भांति लोकाचार को कदापि तिलाञ्जलि न दे सके।[1] श्री दाऊदयाल गुप्त की राधा कृष्ण से पृथक नहीं, आदि माया, साक्षात् लक्ष्मी और वृषभानु कन्या है। 'राधा और कृष्ण की दो देह होते हुए भी प्राण एक है।" [2]

राधा साक्षात् प्रकृति स्वरूपा हैं और परम पुरुष के साथ रहती है—"वह आदि शक्ति है और अवतार के रूप में उनका जन्म ब्रजवन में रावल ग्राम में हुआ है"[3] "जो मथुरा के उस पार गोकुल के पास बसा हुआ है।"[4] राधिका जग द्वारा वन्दनीय देवियों मे महान् और सुयश की साक्षात प्रतिमा है, जिसका शेष भी यशगान करते हैं। भारतीय लौकिक पद्धति की भान्ति ही राधा पुर–कन्याओ के साथ उपवन में गणगौरि पूजने जाती है। "कवि भारतीय मर्यादा का उल्लंघन न कर लोकाचार को आवश्यकीय मान भाण्डीर वन में उनका विवाह कराता है।"[5] राधा–कृष्ण मिलन की कामना से तुलसी–रोपण करती हैं। उनके नेत्रों से अनवरत अश्रु प्रवाहित होते हैं तथा शैया पर बेचैन पडी रहती है। उनकी रात्रि सुख से नहीं कटती है। राधा अन्त में यही कहती है कि – हे मनमोहन मदन देव ! यदि तुम शीघ्र नहीं आओगे तो राधा को भी जीवित नहीं पाओगे।"[6] बिना घनश्याम के राधा का कोई आधार नहीं। कवि ने कुछ काल उपरान्त राधा और कृष्ण का मिलन कराया है। राधा सामने से कृष्ण को आता

1- हिन्दी साहित्य में राधा–द्वारकाप्रसाद, पृ. 553
2- राधा–महाकाव्य–दाऊदयाल गुप्त, पृ० 86
3- वही, पृ० 53
4- वही, पृ० 68
5- वही, पृ० 71
6- वही, पृ० 234

हुआ देख प्रसन्न हो उनके चरणों में गिर पड़ती है। कवि ने समीक्ष्य काव्य मे कृष्ण से अधिक राधा को महत्ता प्रदान की है। राधा के चरित्र चित्रण में जहाँ श्री दाऊदयाल जी ने गर्ग संहिता, श्रीमद् भागवत्, गीत गोविन्द आदि अन्य ग्रन्थों का आश्रय लिया है वहाँ राधा--कृष्ण का मधुर मिलन करा कर अपूर्व नवीनता एवं मौलिकता का भी परिचय दिया है।

निष्कर्ष

हिन्दी काव्य परम्परा में आज तक जितने भी काव्य राधा--कृष्ण के चरित्र को लेकर रचे गये हैं उनमें से अधिकांश में राधा नायिका के रूप मे ही चित्रित हुई है। वस्तुतः राधा और कृष्ण का विशिष्ट सम्बन्ध है। राधा के लिए कृष्ण सर्वस्व है। विभिन्न काव्यकारों ने इन्हें मानवी देवी और त्यागमयी नारी के रूप में चित्रित किया है। किसी ने यदि उन्हें गम्भीर प्रेमिका के रूप मे अंकित किया है तो किसी ने समाज--सेविका में प्रस्तुत किया है। हरिऔध जी ने राधा को विशिष्ट चित्रित किया है परन्तु आधुनिक युग के कवियों ने नवीनतम भावों को प्रगट करते हुए राधा को लोक तथा देश सेविका के रूप में ला खड़ा किया है। राधा साक्षात प्रकृति स्वरूपा हैं, वे परम-पुरुष की संगिनी हैं। वे अनन्त शक्ति हैं और अवतार के रूप में भी मान्य रही हैं। वैसे दोनों एक रूप होते हुए भी वे कृष्ण की नित्य सिद्धा एवं प्रिया राधिका ही हैं। इस प्रकार राधिका प्रथमा शक्ति है, प्रथमा सिद्धि, निष्कामा और प्रेममयी हैं। राधा ही दुर्गा, पार्वती, परा-शक्ति रामेश्वरी नाम से विभूषित हैं। राधा भगवान की छाया--शक्ति है और इसी कारण इनको योग माया के नाम से पुकारा गया है और यही प्रकृति देवी स्वरूपा भी हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राधा का चरित्र विकास हिन्दी काव्य परम्परा के माध्यम से पर्याप्त वैविध्यपूर्ण रूप में हुआ है। हिन्दी के आधुनिक प्रबन्ध काव्यकारों ने राधा के पौराणिक स्वरूप को आधुनिक युग की संवेदना और चेतना के अनुरूप चित्रित करने मे अपने काव्य कौशल का पूर्ण परिचय दिया है। हरिऔध की राधा के पश्चात् धर्मवीर भारती की कनुप्रिया ही सर्वश्रेष्ठ चरित्र सृष्टि है। कनुप्रिया के चरित्र मे मौलिकता और जीवन्तता दोनों विद्यमान हैं।

३

कथ्यमूलक-विश्लेषण

कथासार

आधुनिक काल की प्रबन्ध रचनाओं में "कनुप्रिया" कथ्य की दृष्टि से परम्परित है। भारती जी ने "कनुप्रिया" के माध्यम से पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं को सूत्र बद्ध करके नवीन कथ्य की संयोजना की है। "समस्त काव्य की रचना में प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से राधा ही है जिसके विविध गीतों, भावों, अनुभूतियों, स्मृतियों, मन स्थितियों कल्पनाओं से कथानक को यथा संभव विस्तार मिला है।"[1] भारती ने कनुप्रिया की मौलिक उद्भावना से कृति को कलात्मक संस्पर्श देकर इतिवृत्तात्मक होने से बचा लिया है। वास्तव में कनुप्रिया के कथ्य में कैशोर्य सुलभ मनः स्थितियों के माध्यम से उत्पन्न प्रश्नों और आग्रहों का क्रमिक विकास हुआ है।

कथ्य के सम्पूर्ण कथानक को कवि ने पांच खण्डों में विभक्त किया है—(1) पूर्वराग, (2) मंजरी परिणय, (3) सृष्टि संकल्प, (4) इतिहास और (5) समापन। इनमें से भी प्रत्येक खण्ड को अलग-अलग भागों में पुनः वर्गीकृत किया गया है। जैसे—प्रथम खण्ड "पूर्व राग" मे पाच गीत हैं। जैसे—पहला गीत, दूसरा गीत, तीसरा गीत, चौथा गीत और पांचवा गीत। दूसरे खण्ड को कवि ने तीन भागों में विभाजित किया है—आम्र बौर का गीत आम्र बौर का अर्थ और तुम मेरे कौन हो? इसी तरह

1- धर्मवीर भारती : कनुप्रिया तथा अन्य कृतियां, पृ० 27

"सृष्टि संकल्प" नामक तीसरे खण्ड मे तीन भाग ही है—सृजन-संगिनी, आदिम भय और केलि सखी। "इतिहास" खण्ड में कवि ने सात कविताए प्रस्तुत की हैं—विप्रलब्धा, सेतु : मैं, उसी आम के नीचे, अमगल छाया, एक प्रश्न, शब्द अर्थहीन, समुद्र स्वप्न। अन्तिम अर्थात् पांचवें खण्ड में "समापन" का भाव उजागर किया गया है।

"कनुप्रिया" के प्रथम खण्ड में कवि ने पांच गीत प्रस्तुत किये हैं, जिनका नामकरण कवि नही कर पाये हैं। "प्रथम गीत" में प्रतीक्षारत छायादार पवित्र अशोक वृक्ष का चित्रण किया गया है जो राधा के जावक रचित पदचाप से प्रस्फुटित होता हुआ चित्रित किया गया है। इस तरह यह पहला गीत लोक प्रचलित अशोक वृक्ष की कथा के सहारे से राधा के नवोद्भूत असीम सौन्दर्य का अभिव्यंजक बन पड़ा है। 'दूसरे गीत" में कवि अचानक ही जिस्म के सितार मे स्वर्णिम संगीत का आभास कराता है जो समस्त आवरण को चीर कर एक-एक तार से झकृत हो उठता हैं। भारती जी ने इसी गीत के माध्यम से राधा की नारी सुलभ लज्जा एवं पुलक का सूक्ष्म चित्रण किया है। "तीसरा गीत" भी पूर्वरागीय स्थिति के समान ही है। यहां राधा का कृष्ण के प्रति आत्म समर्पण भाव व्यंजित होता है। राधा कृष्ण को युग युगान्तर से निर्लिप्त निर्विकार, वीतरागी और अज्ञात वन देवता समझ कर प्रणाम कर रही है किन्तु उसे वास्तविकता का बोध बहुत बाद मे हुआ कि कृष्ण तो सम्पूर्ण का लोभी है। उसे अंश मात्र से कोई मतलब नही है। उसे यह ज्ञात नही था कि अस्वीकृति ही अटूट बन्धन बन प्रणाम बद अंगुलियों, कलाइयों में इस तरह लिपट जायेगी कि कभी खुलेगी भी नहीं। "यहां पर कृष्ण का चरित्र एक चतुर एव धूर्त पुरुष सा उभर कर निखरा है। राधा में एक भोली-भाली सहज अबोध बालिका का चित्रण है।"[1] तीसरे गीत में पूर्ण रूप से प्रणयारम्भ है।

"चौथा गीत" प्रेमपूत राधा की तन्मय स्थिति का व्यंजक है जहां वह प्रकृति के कण-कण में राधा की प्रति छवि अनुभूत करती है। चतुर्थ गीत यौवना गमन की स्थिति को व्यक्त करता है। यौवनावस्था में राधा पूरी तरह से कृष्ण पर आसक्त और समर्पित दिखायी देती है। यही आसक्ति राधा को यमुना के जल में निर वस्त्र होकर तैरने के लिए बाध्य कर देती है। राधा घण्टों जल को देखती रहती है और यह अनुभव करती है कि जल

1- धर्मवीर भारती : कनुप्रिया एवं अन्य कृतियां, पृ० 29

की नीलिमा और सांवली गहराई कृष्ण के व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया है जिसने श्यामल और प्रगाढ़ आलिंगन में उसके पोर-पोर को कम रखा है ।

पांचवें गीत में राधा के पश्चाताप का वर्णन हुआ है। "राधा को गहरा पश्चाताप है कि वह रास की रात को असमर्पित ही क्यों लौट आई? समर्पित होने की तीव्र आकांक्षा और साथ ही परितोष की आतुरता भी चित्रित की गयी है। राधा सोचती भी है और पश्चाताप भी करती है कि मैं उस रास की रात जल्दी ही क्यों लौट आई। कण-कण कृष्ण को देकर रीत क्यों नहीं गयी? कृष्ण ने उस रात जिसे भी आत्मसात् किया उसे सम्पूर्ण बना कर ही घर भेजा। पूर्वराग के अन्तर्गत कृष्ण की ओर आकृष्ट राधा का अनुराग भाव व्यक्त हुआ है। उसके भीतर प्रेम का जो स्वर्णिम संगीत छिपा है. वह कृष्ण के लिए झंकृत हो जाता है। यमुना में स्नान करते समय जैसे उसे कृष्ण का ही स्पर्श-सुख मिलता है। पूर्वराग की राधा ने एक-एक क्षण को भोगा है अतः प्रत्येक क्षण से उनका तादात्मीकरण हो चुका है।

"कनुप्रिया" के द्वितीय खण्ड का नामकरण 'मंजरी परिणय" किया गया है। इसमें "आम्र बौर का गीत", आम्र बौर का अर्थ" और तुम मेरे कौन हो? नामक तीन गीतों का संकलन हुआ है। "मंजरी परिणय" की प्रथम दो कविताओं में राधा के व्यक्तित्व का जो रूप प्रतिफलित हुआ है उसमे रोमानियत अधिक है। 'आम्रबौर का गीत' शीर्षक कविता में राधा का स्वरूप भक्तिकालीन या रीतिकालीन कवियों की राधा से बहुत भिन्न नहीं है। उसमे भावाकुलता, प्रणयाकांक्षा मिलन की आतुरता, विरह विदग्धता, तन्मयता आदि सभी स्थितियां ज्यों की त्यों विद्यमान हैं। राधा और कृष्ण के मिलन-प्रसंगो मे जिन उपमानो का प्रयोग हुआ है वे भी परम्परागत और रोमानियत से भरपूर है। 'आम्रबौर का गीत' में जन्म जन्मान्तर से कृष्ण की रहस्यमयी लीला की एकान्त संगिनी राधा एक विशेष मनःस्थिति मे विचरण करती हुई दर्शायी गयी हैं। वे प्रतीक्षारत कनु को बताती है कि नारी के मन मे प्रेम के अतिरिक्त भी अनेकानेक संवेदनाए होती है। इसी कारण वह चाहकर भी आम्र वृक्ष के नीचे बांसुरीवादनरत कनु के पास नही आ पाती है। लज्जा केवल जिस्म की नहीं मन की भी होती है। लाज के कारण ही एक मधुर भय, एक अनजाना संशय, एक आग्रह भरा गोपन, एक निरुपाय वेदना एव उदासी उसे बारबार चरम

मुख के क्षणों में भी अभिभूत कर लेती है। यही कारण है कि दिन ढलने पर, सन्ध्या होने पर, नन्द गांव की पगडंडी पर गायों के स्वत: मुड़ जाने पर मछुओं के नावें बांध देने पर भी प्रतीक्षारत कनु के पास राधा नहीं पहुँच पाती है। अन्ततः कनु कन्धे पर झुकी एक डाली से आम्रबौर तोड़ कर चूर-चूर कर राधा की मांग-सी खाली पगडंडी पर बिखेर देते हैं। राधा ने इस संकेत को मांग में सिन्दूर भरने के रूप में स्वीकारा है। 'तुम मेरे कौन हो' शीर्षक गीत में राधा और कृष्ण के कालजयी सम्बन्धों का प्रकाशन है। कृष्ण विभिन्न युगों में अन्तरंग सखा, सहोदर, दिव्य पुरुष, आराध्य, मन्तव्य एवं सर्वस्व रहे हैं किन्तु कनुप्रिया ने सर्वत्र नारी धर्म का पूर्णरूपेण निर्वाह किया है। वर्षा से भीग जाने पर असहाय वृन्दावनरक्षक कृष्ण को आंचल में छिपा कर आश्रय दिया है। कालिय नाग की खोज में विषैली यमुना का मथन करते समय विक्षुब्ध हुए तथा इन्द्र को ललकारते समय वही राधा शक्ति सी, ज्योति सी और गति सी सिमट कर एक हो गई।

राधा के व्यक्तित्व में संवेदना का तीखापन मन की शंकाओं तथा संकल्प-विकल्प के दौर से प्रारम्भ होता है। तुम मेरे कौन हो' शीर्षक कविता में राधा के प्रश्न खुलकर सामने आते हैं। यही वह स्थल है जहां से वह आधुनिक बोध को समेटती प्रतीत होती है। उसका भावाकुल मन प्रश्नाकुल हो जाता है और इस स्थिति में वह अपने आप से अनेक प्रश्न कर लेती है। वह स्वयं से आग्रह, विस्मय और तन्मयता से पूछती है कि आखिर यह कृष्ण कौन है? जो जाने अनजाने मेरे मन की गति को बांधता जा रहा है। वह एक-एक करके कृष्ण को अपना अन्तरंग सखा, रक्षक बन्धु, सहोदर, आराध्य, लक्ष्य और गन्तव्य कहती है। इतना ही नहीं प्रलय से बचाने का सामर्थ्य रखने वाला कृष्ण "कनुप्रिया" को दिव्य शिशु भी प्रतीत होता है। वह स्वयं को कृष्ण की सखी, राधिका, बान्धवी, मां और वधू के साथ-साथ सहचरी भी मानती है। ये सम्बन्ध नये हैं और इनकी सर्वाधिक नवीनता यह है कि ये एक ही धरातल पर आकर सन्तुलित हो जाते हैं। यहीं कनुप्रिया में स्त्री-पुरुषों के संबंधों की आधुनिक व्याख्या की गयी है। राधा और कृष्ण तो केवल "मीडियम" भर हैं। असल में तो पुरुष और नारी के विकास को सार्थक बिन्दु पर ले आने के लिए पुरानी बोतल को नये आसव से भरने का प्रयास किया गया है। आगे और भी अनेक स्थल ऐसे आये हैं जहां राधा अपनी भावाकुल तन्मयता में ही अनेकों नयी समस्याओं को उठाती है। अनेक युगीन सन्दर्भों को उद्घाटित करती

है। इस प्रकार वह एक ओर परम्परागत व्यक्तित्व चेतना से युक्त है तो दूसरी ओर नये भाव बोध से भी अभिमंडित है। कनुप्रिया शक्ति-संचरण के निखिल पारावार मे परिव्याप्त होकर विराट, सीमाहीन, अदम्य तथा दुर्दान्त हो उठती है और फिर कान्हु के चाहने पर अकस्मात् सिमटकर सीमा में बन्ध जाती है। यद्यपि राधा की यह स्थिति उसे पौराणिक सन्दर्भ के निकट ले आती है किन्तु इस स्थिति को जो परिणति प्राप्त हुई है वह नये बोध की ही व्यंजक है। कृष्ण की ही इच्छा से मानो राधा थोड़े से जीवन में जन्मजन्मान्तरों की समस्त यात्राओं को दुहराने के लिए तत्पर होती है। यथा—

> 'सम्बन्धों की घुमावदार पगडण्डी पर
> क्षण-क्षण पर तुम्हारे साथ
> मुझे इतने आकस्मिक मोड़ लेने पड़े हैं।"[1]

इतना ही नही राधा चारों ओर से होती हुई प्रश्नों की बौछार से घबराकर अपने सम्बन्धों को नयी व्याख्या देती है—

> "सखी-साधिका-बांधवी
> मां-वधू-सहचरी
> और मैं बार-बार नये-नये रूपों में
> उमड़-उमड़ कर
> तुम्हारे तट तक आयी
> और तुमने हर बार अथाह समुद्र की भांति
> मुझे धारण कर लिया।
> विलीन कर लिया—
> फिर भी अकूल बने रहे।"[2]

'सृष्टि सकल्प" खण्ड में राधा के मन के सभी प्रश्न और सभी अकट जिज्ञासाएं पूरे जोर जोर से अभिव्यजित होती हैं। सृजन-संगिनी राधा कृष्ण की इच्छा और संकल्प शक्ति के रूप में अपनी स्थिति को भी रूपायित करती है। अनेक प्रश्नों और जिज्ञासाओं को उभारती हुई राधा इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि यह निखिल सृष्टि हमारे तुम्हारे प्रगाढ़ालिंगन का परिणाम है। वह कहती है—

1. कनुप्रिया, पृ० 37
2. वही, पृ० 38

"और यह प्रवाह में बहती हुई
तुम्हारी असंख्य सृष्टियों का क्रम
महज हमारे गहरे प्यार
प्रगाढ़ विलास
और अतृप्त क्रीड़ा की अनन्त पुनरावृत्तियां हैं।"[1]

कृष्ण के सम्पूर्ण अस्तित्व का अर्थ ही है—मात्र सृष्टि। कृष्ण की इच्छा का ही परिणाम सम्पूर्ण सृष्टि है। इच्छा का अर्थ राधा के अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता है। अखिल सृष्टि को अपने कारण कृष्ण की इच्छा का परिणाम समझने वाली राधा के मन मे जिज्ञासा के साथ ही साथ एक भय भी है। वह अपनी विराटता का अनुभव करके भी सप्रश्न है—

"क्यों मेरे लीला बन्धु
क्या वह आकाश गंगा मेरी मांग नहीं है
फिर उसके अज्ञात रहस्य
मुझे डराते क्यों हैं।[2]

वस्तुतः राधा सभी अज्ञात रहस्यों को जानना चाहती है, उसे भय भी लगता है। प्रश्न यह है कि जब कृष्ण और राधा ही सर्वत्र व्याप्त है और कृष्ण का संकल्प और इच्छा ही राधा है तो फिर उसे किससे भय लगता है? यही भय राधा के उत्फुल्ल लीला तन पर कोहरे की तरह फन फैलाकर या गुंजलक बांध कर बैठ गया है। फलतः उद्दाम क्रीड़ा के क्षणों में वह प्रश्ना-क्रान्त और भया क्रान्त हो जलपरी की तरह छटपटाती रहती है।

"सृष्टि संकल्प" खण्ड को भी भारती जी ने तीन कविताओं के रूप मे प्रस्तुत किया है। इन कविताओं का नामकरण है—सृजनसंगिनी, आदिम भय और केलिसखी। वस्तुतः देखा जाय तो इस काव्य का प्राण यही कविताएं हैं। इन्हीं कविताओं के माध्यम से राधा के व्यक्तित्व में आधुनिक संवेदना को साकार किया गया है। इन कविताओं में राधा की असंख्य आशंकाएं, संकल्प-विकल्प और द्वन्द्व पूर्ण मनः स्थितियों के रूप में

1- कनुप्रिया, पृ० 44
2- वही, पृ० 46

चित्रित हुई है। नारी और पुरुषों के सम्बन्धों को समानता के आधार पर परखा गया है। पुरुष और नारी एक दूसरे के सम्पूरक हैं। पुरुष यदि सृजनकर्ता है तो नारी सृजन की प्रेरणा। "सृजन संगिनी" कविता में राधा ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सम्पूर्ण इच्छाओं का अर्थ केवल "वह" है। 'आदिम भय" कविता में पुनः भावाकुल तन्मयता के क्षणों में अद्भुत-संशय, शंका, भ्रम और अवरोध उत्पन्न करने वाली मन स्थितियों के रूप में चित्रित किया गया है। 'केलि सखी" कविता में युग की वासना और प्रणयानुभूति का रूप परिवर्तन दर्शाया गया है। यहां "आदिम भय" को तर्कहीन-दिशाहीन कहा है। राधा-कृष्ण की लीला संगिनी ही नहीं सृजन संगिनी भी है। समस्त सृष्टि कनु की इच्छा है, संकल्प और समस्त संकल्पों का अर्थ है राधा, जिसकी खोज में काल की अनन्त पगडंडियों पर सूरज और चांद को भेजा गया है जिसके लिए महासागर ने उत्ताल भुजाएं फैला दी हैं. जिसे नदियों जैसे तरल घुमाव दे-देकर तरंग मालाओं की तरह अपने वक्ष पर, कंठ में, कलाइयों में लपेट लिया है आदि। सृष्टि-क्रम राधा-कृष्ण के गहरे प्यार, प्रगाढ़ विलास, अतृप्त क्रीडा की अनन्त पुनरावृत्तियां हैं। 'आदिम भय" "सृजन-संगिनी" राधा के प्रगाढ़ विलास और अतृप्त केलिक्रीड़ा की लौकिक अभिव्यक्ति है। कनुप्रिया का लीला तन निखिल सृष्टि है परन्तु उसमें एक आदिम भय परिव्याप्त है जो असंख्य प्रज्ज्वलित सूर्यों से, आकाश से, गंगा की धारा चन्द्र कलाओं और समुद्र की उत्ताल तरंगों से उद्भूत होता है। राधा कृष्ण से निवेदन करती है कि कांपते हाथों से यह वातायन बन्द कर दो। सभी दिशाओं को वह बांध चुकी है, जगत उसमें लीन हो चुका है और सम्पूर्ण सृष्टि के अपार विस्तार में वह अन्तरंग केलिसखी कनु के साथ ही है। कथानक की दृष्टि से 'सृष्टि संकल्प का अपना महत्व है क्योंकि कवि की दार्शनिक मुद्राएं यहां मुखरित हुई हैं।

"इतिहास" खण्ड में कवि ने सात कविताएं रखी हैं जो क्रमशः इस प्रकार है— विप्रलब्धा, सेतु: मैं, उसी आम के नीचे अमंगल छाया, एक प्रश्न, शब्द. अर्थहीन और समुद्र-स्वप्न। इन कविताओं में आधुनिक भाव बोध की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। "विप्रलब्धा" कविता राधा की विरह व्यथा से जुड़ी हुई है किन्तु इस कविता में अहम् और आत्म संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। 'सेतु मैं" कविता में राधा स्वयं को पगडण्डी नहीं सेतु के रूप में देखती है। सेतु राधा के जिस्म का प्रतीक है।

"उसी आम के नीचे" कविता तन्मयता के गहनतम क्षणों की पुन: स्मृति है। राधा संयोगावस्था और वियोगावस्था में कोई मौलिक अन्तर नहीं मानती है। मिलन की स्मृति भी उसकी रागात्मक चेतना को झकझोर देने में सक्षम है। "अमगल छाया" शीर्षक कविता में द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका और परिवर्तित मानवीय सम्बन्धों की पृष्ठभूमि को अंकित किया गया है। कवि की दृष्टि में युद्धों का सबसे बड़ा कुप्रभाव भावनाओं की निर्मम हत्या है। महाभारत के युद्ध मे अठारह अक्षौहिणी सेनाओं का भाग लेना अपरिमित जन-धन के विनाश के साथ-साथ राधा के रागात्मक संबधों के ध्वंस का भी कारण बना। 'एक प्रश्न" शीर्षक कविता में वर्तमान युग की युद्ध लोलुप राजनीति और व्यक्ति मन की भावुक स्थितियों के असामजस्य का प्रश्न प्रस्तुत किया गया है। इसी कविता मे युद्ध के सार्थक्य और अनौचित्य दोनों ही प्रश्न सन्दर्भों को संजोया गया है।

"शब्द : अर्थहीन" शीर्षक कविता में इसी सार्थकता के प्रश्न को पुनः दोहराया गया है। राधा की दृष्टि में कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व आदि शब्द अपने सन्दर्भों को छोड़ चुके हैं। "समुद्र स्वप्न" इस काव्य की सर्वोत्कृष्ट कविता है जिसमे प्रतीकों के माध्यम से युग सत्य की अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने महाभारत के युद्ध और दूसरे विश्व युद्ध के सत्-असत् स्वरूप पर तार्किक टिप्पणी की है। वास्तव में यह कविता आधुनिक युग के इतिहास की विडम्बना का चित्रण करती हैं। राधा की दृष्टि में पूर्ण युद्ध का अवलम्ब ग्रहण करना सर्वथा अनौचित्यपूर्ण है। राधा कृष्ण के प्रेम में पगी हुई है। राधा कनु के पुकारने पर जीवन की पगडडी के कठिनतम मोड़ पर उसकी प्रतीक्षा करती है ताकि वह प्रेम के क्षणों को केलिसखी इतिहास मे योगदान दे सके। वह विप्रलब्धा नारी के रूप में भी हमारे सामने प्रस्तुत होती है। कनु उसे छोड़कर महाभारत के युद्ध का संचालन करने चले गये। विरहिणी राधा की स्थिति भी अचरजमयी हैं—न उलाहना, न उपालम्भ, न तानाकशी, न पछाड़े खाने, न कंकाल मात्र होना, न रोना बल्कि इनसे भिन्न सहज रूप से मांगे तन्मयता के सुख का स्मरण करना। "समुद्र स्वप्न" की राधा का व्यक्तित्व अतीव महनीय है। कृष्ण कभी मध्यस्थ, कभी तटस्थ, कभी युद्धरत होकर खिन्न, उदास एव कुछ-कुछ आहत है क्योंकि वे स्वयं न्याय-अन्याय सद्‌सद्, विवेक-अविवेक की कसौटी का निर्णय नहीं कर पाते। लगता है जैसे वे सर्वस्व त्याग कर राधा के लिए भटकती हुई एक पुकार है। "समापन" में जन्म-जन्मान्तरों की अनन्त पगडंडी के कठि-

गतम मोड़ पर खड़ी होकर प्रतीक्षारत राधा कनु को समझाती है कि उसके बिना शब्द निरर्थक है। राधा के बिना सब रक्त के प्यासे और अर्थहीन शब्द है। राधा के सहयोग से वेणी में अग्निपुष्प गूंथने वाली कनु की उंगलिया इतिहास में अर्थ गुंजा सकेगी ? यह चिन्तनीय है।

"समापन" खण्ड में कृष्ण शान्त, क्लान्त और उदासी का अनुभव करते हैं और युद्ध त्रास से विक्षुब्ध होकर राधा को पुकारते है। राधा सब कुछ त्याग कर कृष्ण के साथ खड़ी हो जाती है। वह इस बात का अनुभव करती है कि मेरे बिना कृष्ण अपूर्ण है। अतः राधा जो केवल तन्मयता मे जीवित रही है वह अब कृष्ण के साथ आकर इतिहास गूंथने में सहायक होती है। "कनुप्रिया" प्रबन्ध काव्य का उद्देश्य ही यह स्पष्ट करना है कि नारी और पुरुष के साहचर्य से ही विकास संभव है। यहां कृष्ण–राधा नर–नारी के प्रतीक बनकर आये है। उसके माध्यम से ही पुराने विषय को नयी वस्तु के साथ प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्षत. यह कहा जा सकता है कि "कनुप्रिया" की कथावस्तु अत्यन्त सक्षिप्त है। अलग–अलग भाव गीतो में कथाकार ने बृहद इतिहास को समेटकर अपनी कला–सामर्थ्य का परिचय दिया है।

कथात्मक आधार स्रोतों का सन्धान

कनुप्रिया का आधार स्रोत हमे आज से नही अपितु बहुत पहले से ही मिला हुआ है। वह अनेकानेक रूपो में पुराण साहित्य तथा पूर्ववर्ती सस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी काव्यों मे वर्णित हुई है। इन कथा स्रोतों का विवेचन दूसरे अध्याय मे किया जा चुका है।

कथा विधान का सौंदर्य

भारती जी ने "कनुप्रिया" के कथा विधान को सौंदर्य के झूले मे झुलाने का प्रयत्न भी अत्यन्त मार्मिक ढग से किया है। सम्पूर्ण काव्य एक प्रेम–भाव को लेकर रचा गया है जिसमें कृष्ण और राधा के प्रेम मिलन से जुड़े प्रसंगों को दिखाया गया है। इन प्रसंगों की सरचना में कल्पना शक्ति का यथास्थान पर सुन्दर प्रयोग हुआ है। कथा विधान के सौन्दर्य का विश्लेषण हम निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं—

कल्पना का प्रयोग

"कनुप्रिया" की सम्पूर्ण योजना में कल्पना का सशक्त प्रयोग

हुआ है। इसके प्रारम्भ में एक ओर राधा की भावाकुल तन्मयता है तो दूसरी ओर उसके द्वारा अनजाने में ही उठाये गये प्रश्न। यह पूरी तरह से कवि की कल्पना की देन हैं। 'बीसवी शती की हमारी मान्यताओं में कितना अदल-बदल हुआ है, कितना कुछ बन पड़ा है, कितना बदला है, कितना बिगड़ा है। ऐसी स्थिति में यदि "कनुप्रिया" की भावाकुल तन्मयता कुछ नये वैचारिक सन्दर्भों का उद्घाटन करे तो यह कवि की कल्पना ही है।"[1] राधा अज्ञात विषयों को भी जानना चाहती है, उसे भय भी लगता है, डर से वह कांप भी रही है, यह अद्भुत कल्पना ही है। जब कृष्ण और राधा ही सर्वत्र व्याप्त हैं और कृष्ण का संकल्प और इच्छा राधा है तो फिर भय किससे लगता है? राधा इतिहास को चुनौती देती है कि जब तक मैं अपने प्रगाढ़ के क्षणों मे अस्थाई विराम चिन्ह न हूं तब तक समय अचूक धनुर्धर तुम अपने शायक उतारे रहो और धनुष बाण को तोड़कर अपने पख समेटकर द्वार पर चुपचाप प्रतीक्षा करो। यथा—

"और कह दो समय के अचूक धनुर्धर से
कि अपने शायक उतार कर
तरकस मे रख लो
और तोड दे अपना धनुष
और अपने पख समेटकर द्वार पर चुपचाप
प्रतीक्षा करो—
जब तक मैं
अपनी प्रगाढ केलिकथा का अस्थायी विराम चिन्ह
अपने अधरों से
तुम्हारे वक्ष पर लिख कर, थम कर
शैथिल्य की बाहों मे
डूब न जाऊं।"[2]

सौन्दर्य और प्रणय के जितने भी संकेत हमें इस प्रबन्ध काव्य में मिलते हैं, उनमें निश्चय ही कल्पना का सौन्दर्य है। राधा की अनन्त मुद्राओं, क्रियाओं, भावनाओं तथा स्मृतियों के चित्र अत्यधिक सजीव हैं। ऐसी रसमयता और भव्यता किसी अन्य काव्य में ढूंढ़ने पर भी दुर्लभ है।

1- नयी कविता : नये धरातल, पृ० 195

2- कनुप्रिया, 53–54

जैसे —

> "अक्सर जब तुमने बन्शी बजाकर मुझे बुलाया है
> और मैं मोहित मृगी सी भागती चली आयी हूं
> और तुमने मुझे अपनी बाहों में कस लिया है
> तो मैंने डूबकर कहा है
> कनु मेरा लक्ष्य है मेरा आराध्य है मेरा गन्तव्य।"[1]

युद्ध को इसमें एक नयी दृष्टि से देखने का प्रयास किया है, जो एक कल्पना नहीं तो और क्या हो सकता है ? और बिना लम्बे-चौड़े तथा सारगर्भित तर्क दिये उसकी व्यर्थता सिद्ध की गयी है। इस दृष्टि से इसमें युग सापेक्ष शान्ति का सन्देश मिलता है—

> "मैं कल्पना करती हूं कि
> अर्जुन की जगह मैं हूं
> और मेरे मन में मोह उत्पन्न हो गया है
> और मैं नहीं जानती कि युद्ध कौनसा है
> और मैं किसके पक्ष में हूं
> और समस्या क्या है
> और लड़ाई किस बात की है
> लेकिन मेरे मन में मोह उत्पन्न हो गया
> क्योंकि तुम्हारे द्वारा समझाया जाना
> मुझे बहुत अच्छा लगता है।
> और सेनाएं स्तब्ध खड़ी हैं
> और इतिहास स्थगित हो गया है
> और तुम मुझे समझा रहे हो।"[2]

कथात्मक विनियोजन में नाट्य प्रवृत्ति

"कनुप्रिया" के कथा-विधान में सजीवता लाने के लिए नाट्य प्रवृत्ति का सहारा लिया गया है। कवि ने "कनुप्रिया" में राधा-कृष्ण को देव स्वरूप में स्वीकार नहीं किया है अपितु एक सहज नायक और नायिका का स्वरूप दिया है। नाटक की भांति इसमें छोटे-बड़े सवादों का प्रयोग

1- कनुप्रिया, पृ॰ 34
2- कनुप्रिया, पृ॰ 71

किया गया है। संवाद-योजना पूर्ण रूप से सारगर्भित तथा पाठक के हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ने वाली है। एक संवाद के माध्यम से कवि भारती ने राधा के मुख से कृष्ण को अपना सर्वस्व कहकर उनको ग्रहण किया है लेकिन दूसरे ही क्षण जब कृष्ण-राधा को उसकी सखी के सामने बुरी तरह छेड़-छाड़ करते हैं तो वही राधिका कृष्ण को अपना कुछ भी नहीं समझती है और कहती है कि—

'कनु मेरा लक्ष्य है, आराध्य है, मेरा गन्तव्य !
पर जब तुमने दुष्टता से
अवसर सखी के सामने मुझे बुरी तरह छेड़ा है
तब मैंने खीज कर
आंखों में आंसू भर कर
शपथें खा-खा कर
सखी से कहा है :
मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं है
मैं कसम खाकर कहती हूं
मेरा कोई नहीं है।"[1]

कृष्ण के विविध रूपों के सांकेतिक चित्रण में परिस्थितियों का महत्वांकन पूर्ण रूप से नाट्य प्रवृत्ति पर आधारित है। प्रणयानुभूति की प्रगाढ़ता के समक्ष युद्धादिक प्रश्नों की निरर्थकता को संकेतित किया गया है और इतिहास को भी स्थगित बताया गया है, जो पूर्णतया नाटकीय है। एक तरफ राधा का तन्मयकारी रूप तथा प्रणयावेग पूरित व्यक्तित्व है और दूसरी तरफ कृष्ण राजनीतिज्ञ के रूप में भी दिखायी देते हैं। नारी प्रकृति स्वरूपा है किन्तु अभिसार के मादक क्षणों में वह सब कुछ त्याग कर केवल स्वयं रह जाना चाहती है। यथा—

"यह बाहर फैला-फैला समुद्र मेरा है
पर आज मैं उधर देखना नहीं चाहती
यह प्रगाढ़ अन्धेर के क्रोड़ में झूमती
ग्रहों-उपग्रहों और नक्षत्रों की
ज्योतिमाला मैं ही हूं।"[2]

---

1. कनुप्रिया, पृ० 34
2. वही, पृ० 52

इस कृति की शैली में भी नाटकीयता विद्यमान है, जो परिवेश की गतिशीलता और उसके उत्थान-पतन को व्यक्त करती है। यह नाटकीयता शैलीगत प्रभावों को व्यक्त करने में पूरी तरह सफल है। अनेक स्थलों पर तो स्थिर-बिम्ब भी नाटकीयता से भरपूर हैं। यथा—

"मैंने कोई अज्ञात वन देवता समझ
कितनी बार तुम्हें प्रणाम कर सिर झुकाया
पर तुम खड़े रहे, अडिग, निलिप्त, वीतराग, निश्चल।
तुमने कभी उसे स्वीकारा ही नहीं।"[1]

घटनाओं की सांकेतिक अभिव्यक्ति

"कनुप्रिया" प्रबन्ध-काव्य होते हुए भी इसमें घटनाओं का पूर्ण अभाव ही रहा है। घटनाओं के क्रम में हमें कृष्ण-राधा के मिलन की घटना का वर्णन मिलता है। महाभारत के युद्ध की घटना का वर्णन भी मिलता है। पहली घटना हमें कृष्ण-राधा के मिलन से सम्बन्धित है। राधा-कृष्ण के प्रति समर्पित होना चाहती है। वह कहती है कि मैं तो अंकुरण से लेकर पुष्पित होने तक हर पल तुम्हारे ही भीतर समायी हुई रहती हूँ। मैं तुमसे हमेशा प्रगाढ़ता से मिलती रही हूँ। मैं तुम में पूर्ण रूप से समर्पित थी और तुम मुझ में ही थे। जब तुम मुझ मे ही समाये हुए थे तो मैं तुम्हें अपने से कैसे अलग रख सकती थी? मिलनातुर राधा-कृष्ण से कह रही है कि—

"यमुना के नीले जल में
मेरा यह वेतसलता सा कांपता तन-बिम्ब और उसके चारों ओर
सांवली गहराई का अथाह प्रसार, जानते हो कैसा लगता है
मानो यह यमुना की सांवली गहराई नहीं
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम
अपने श्याम प्रगाढ़ अथाह आलिंगन मे पोर-पोर
कसे हुए हो।"[2]

रास-लीला के अवसर पर कृष्ण की मुरली की मधुर तान सुनकर राधा सब कुछ छोड़कर रास स्थल पर दौड़ जाती थी। कृष्ण उसे समझा-बुझाकर घर भेज देते थे। कृष्ण की कृपा से गोपियां अंशतः स्वीकृत होकर भी

1- कनुप्रिया, पृ० 14
2- वही, पृ० 16

पूर्णत्व का लाभ पा लेती थी। यहां थोड़ा बहुत ग्रहण करने के बाद सम्पूर्णता का उपालम्भ पाने वाली राधा को पूर्ण प्राप्ति की पीड़ा देती है। सम्पूर्णता भी तभी सम्पूर्णता है जब एकत्व हो, प्रिय का सतत् साहचर्य और सामीप्य हो। राधा कृष्ण के व्यवहार को विचित्र बताती है और कहती है कि तुम्हारे द्वारा दी गयी सम्पूर्णता मेरे मन में एक टीस उत्पन्न करती रहती है। कभी तो तुम मुरली की सुन्दर तान सुना कर मुझे बुला लेते हो और मैं भी कैसी हू जो बिना चाहे ही तुम्हारी ओर आकर्षित हो आ जाती हूँ।

राधा अपना सर्वस्व लेकर कृष्ण की ओर बढ़ती है कारण कि वह अपना सर्वस्व कृष्ण को दे पाये। वह घर वापस नहीं जाना चाहती। इस स्थिति मे कृष्ण राधा को अंशतः ग्रहण करके स्पर्श व चुम्बनादि का सुख देकर ही घर भेज देते है। परन्तु उसे सतुष्टि नहीं होती। राधा कहती है कि मैं तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर की लीला संगिनी हूं। मैं तुम्हारी रहस्यमयी क्रीडा की एकान्त संगिनी हूं। मैंने सदैव तुम्हारी अनुगता होकर तुम्हारा साथ देने का प्रयास किया है। मैं तुम्हारे जगत् और प्रणय भाव का साधन और साध्य रही हूं। कवि ने महाभारत युद्ध के सतत्-असत् और न्याय-अन्याय पर अपना अभिमत प्रस्तुत किया हैं। यह अभिमत न केवल महाभारतीय युद्ध सन्दर्भों पर आधृत है वरन् आधुनिक युग पर भी। विष्णु शान्त समुद्र मे शेष शायी हैं और लक्ष्मी उनके साथ रहती है। यथा—

> "लहरो के नीले अवगुंठन में
> जहा सिन्दूरी गुलाब जैसा सूरज खिलता हैं
> जहां सैकड़ों निष्फल सीपियां छटपटा रही है
> और तुम मौन हो।"1

राधा युद्ध की अमगल छाया का अनुभव करती हैं और युद्ध की भीषण परिस्थितियो में अपने प्रेम को असहाय अनुभव करती हुई स्वयं को पहचान भी नहीं पाती है। राधा अपने विवेक के सहारे समाधान पा लेती है। उसका समाधान यह है कि कृष्ण मेरे हैं और ये अगणित सैनिक भी उसी प्रिय के ही हैं किन्तु ये सैनिक मुझे "कनु" की तरह पहचानते नही होंगे। अतः यह उस आम की डाल को रौंद डालेंगे जिसने प्रतीक्षा की कितनी ही सन्ध्याएं देखी हैं। युद्ध की इस भूमिका को लेकर राधा के मुख से "इतिहास" का प्रश्न सन्दर्भ भी प्रगट हुआ है।

1- कनुप्रिया, पृ० 73

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि "कनुप्रिया" के कथात्मक विनियोजन में डा० धर्मवीर भारती ने रचनात्मक विशिष्टता के अनेक प्रतिमान प्रस्थापित किये हैं। कथात्मक आधार स्रोतों के अनुसंधान से यह तथ्य प्रकट हो गया है कि समीक्ष्य काव्य का कथानक पौराणिक होते हुए भी युगचेतना से सापेक्ष और सामयिक सन्दर्भों में सर्वथा मौलिक है। कवि ने कथा तन्तुओं को इतना अधिक कल्पना-विस्तार दिया है कि वे सहज ही पाठक को अभिभूत कर लेते हैं। 'कनुप्रिया" की कथा में नाट्य प्रवृत्ति के समावेश और सांकेतिक अर्थ की अभिव्यक्ति के कारण उसमें हमारे युग-जीवन से जुड़े प्रश्नों का सहज ही में समावेश हो गया है। समष्टि रूप में यह कहा जा सकता है कि "कनुप्रिया" का कथ्य सार्थक, व्यंजनापूर्ण, युगीन परिसन्दर्भों के अनुरूप तथा कलात्मक वैशिष्ट्य से पूर्ण है।

४

चरित्र - विधान

'कनुप्रिया' मूलतः चरित्र प्रधान प्रबन्ध काव्य है। इस दृष्टि से इस काव्य के संरचना विधान मे चरित्र विश्लेषण का विशेष महत्व रहा है। कवि की रचना दृष्टि सर्वाविशेष राधा को अभिनव रोमांचक और मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की रही है। सम्पूर्ण काव्य का इतिवृत्त विधान इसी रचना दृष्टि का साक्ष्य है। कनुप्रिया के चरित्र की निम्नांकित विशेषताएं उल्लेखनीय हैं—

राधा का चरित्र

'कनुप्रिया' से पहले जितने भी राधा चरित्र सम्बन्धित काव्य लिखे गये हैं उन सबमें राधा के चरित्र का विश्लेषण पौराणिक प्रसंगो के सन्दर्भ में किया गया है। 'कनुप्रिया' का पौराणिक कथात्मक आधार होते हुए भी उसकी सवेदना और प्रेरणा सर्वथा युगीन,नवीन,समकालीन और आधुनिक है। केवल नयी कविता के सन्दर्भ में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण हिन्दी काव्य परम्परा मे 'कनुप्रिया' विशिष्ट महत्व का चरित्र है। भारतीय साहित्य में बहुत पहले से राधा कृष्ण काव्य की नायिका होने के कारण महत् गौरव की अधिकारिणी रही है। 'श्रीमद्भागवत महापुराण' के रचयिता व्यास जी ने राधा को रस स्वरूप श्रीकृष्ण की रसनीय रूपा परिणति माना है। "वह रस स्वरूप तत्व अपने रस का आस्वाद लेने के लिए स्वयं ही अपने को रसनीय अथवा आस्वाद रूप में परिणत कर देता है। अतः रस स्वरूप की रसनीय रूप प्राप्ति ही सिद्धि या राधा है।" [1] 'कनुप्रिया' के रचयिता ने

1- कृष्ण काव्य में लीला वर्णन, पृ० 134

राधा चरित्र के परम्परागत आधार को ग्रहण करते हुए उसके चरित्र विधान में कल्पना के अभिनिवेश तथा युगीन संवेदना की अद्भुत समाहृति की है।

व्यक्तित्व-विश्लेषण

'कनुप्रिया' की राधा का व्यक्तित्व परम्परा से अलग एक ऐसी नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसे अपनी गरिमा पर विश्वास है, जो कनु के व्यक्तित्व से अपने को कम नहीं मानती है। अपने सौन्दर्य और व्यक्तित्व को कृष्ण का सम्मोहन मानती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि राधा पार्थिव व्यक्तित्व के प्रति भी सचेत है। वह मानती है कि जितना महत्वपूर्ण उसका व्यक्तित्व है, उतना ही महत्वपूर्ण उसका जिस्म भी है। यथा—

> "यहां जो अकस्मात्
> आज मेरे जिस्म के सितार में
> एक-एक तार में तुम झंकार उठे हो
> सच बतलाना मेरे स्वर्णिम संगीत
> तुम कब से मुझमें छिपे सो रहे थे।"[1]

तन्मयता की चरम स्थिति

'प्राक्कथन' में कवि ने स्वीकार किया है कि इस संरचना में कनुप्रिया की तन्मयता की चरम स्थितियों का निरूपण है। जहां कनुप्रिया तन्मय और अभिभूत हो जाती है वहां अपने और कनु के अस्तित्व को एक ही मानने लगती है। विशेष रूप से 'मंजरी परिणय' के अन्तर्गत संकलित राधा की तन्मयता की स्थिति सशक्त व्यंजना से पूर्ण है। "आम्र बौर का अर्थ" गीत में भी तन्मयता की चरम स्थिति का निदर्शन हुआ है। राधा का यह कथन तन्मयता की चरम स्थिति का ही परिचायक है। यथा—

> "तुम जो प्यार से अपनी बाहों में कस कर
> बेसुध कर देते हो
> उस सुख को मैं छोड़ूं क्या
> करूंगी।" [2]

ऐसी स्थितियां काव्य में निरन्तर विकसित होती रहती हैं। राधा

1- कनुप्रिया, पृ० 17

2- कनुप्रिया, पृ० 29

के मान-सम्मान और उसके यौवनोन्माद में सर्वत्र इसी तन्मयता की स्थिति को ही व्यंजित किया गया है।

समर्पण से युक्त प्रणय

राधा पूर्ण रूप से कृष्ण के प्रति समर्पिता रही है। कृष्ण ने उसे जो संकेत किया है वही उसके लिए ज्ञातव्य है, उसके परे कुछ नहीं है। तभी वह आग्रह करती है कि अर्जुन की तरह कभी मुझे भी सार्थकता का स्वरूप समझा दो।"[1] वह कृष्ण के सांवरे लहराते जिस्म, किंचित मुड़ी हुई शंख ग्रीवा, चन्दन बाहों, आत्मरत अधखुली दृष्टि, धीरे-धीरे हिलते जादू भरे होंठ और उनसे स्फुरित होते शब्दों को कैसे भुलाए? कनु के इन समस्त संख्यातीत शब्दों का केवल एक ही अर्थ है—मैं अर्थात राधा। 'कनुप्रिया' का समर्पण प्रतिदान की भावना से मुक्त है, वह केवल समर्पित होना ही जानती है। "कनुप्रिया" में यह समर्पण चरम का स्पर्श कर लेता है। प्रकृति के एक-एक कण में जो कृष्ण को अर्पित है, कनुप्रिया स्वयं को ही उसमें साकार पाती है। कनुप्रिया की रागात्मिकता समर्पण भाव में ही है। उसका समर्पण निश्छल, निःस्वार्थ और सहज संवेदनशील है।

रागात्मक चेतना के स्तर पर संघर्ष

"कनुप्रिया" में राधा की राग चेतना के विभिन्न स्तरों को रूपायित किया गया है। प्रारम्भिक गीतों में राधा भावुक, संवेदनशील और विरहोन्मादिनी के रूप में चित्रित हुई है किन्तु समापन अंश तक पहुंचते-पहुंचते कुरुक्षेत्र का युद्ध (द्वितीय विश्व युद्ध की भूमिका) उसकी मानसिकता को झकझोर देता है। और यही संघर्ष का जन्म होता है। अर्जुन के मोह को कनुप्रिया अपना मोह मानती है। वह कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व आदि विभिन्न स्थितियों को अकारथ मानते हुए मानवीय संवेदनाओं को अधिक महत्व देती है। कनुप्रिया का यह कथन प्रस्तुत सन्दर्भ में कितना सार्थक है—

> "कर्म स्वधर्म निर्णय दायित्व,
> शब्द-शब्द-शब्द··· — —

---

1. "मान लो मेरी तन्मयता के गहरे क्षण
   रंगे हुए अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे तो
   सार्थक फिर क्या है कनु ?"
   —कनुप्रिया, पृ० 69

मेरे लिए नितान्त अर्थहीन हैं—
मैं इन सब के परे अपलक तुम्हें देख रही हूं
हर शब्द को अंजुरी बनाकर
बून्द-बून्द तुम्हे पी रही हू
और तुम्हारा तेज
मेरे जिस्म के एक-एक मूर्छित संवेदन को
धधका रहा है।"[1]

सौभाग्यकांक्षिणी

राधा के चरित्र की विडम्बना है कि वह न तो स्वकीया है और न ही परकीया। अनेक कवियों ने राधा को प्रेमिका, स्वकीया या परकीया रूप में चित्रित किया है। भारती जी ने राधा के चरित्र की विडम्बना को भली-भांति समझा है। राधा को न तो पत्नी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था न मातृत्व का ही सुख। उसकी ये दोनों आकांक्षाए अपूर्ण रह गयीं। अनेक कविताएं हैं जिनमें राधा अपनी मांग को भरी हुई देखना चाहती है। "आम्र मजरी" तथा "आम्र बौर" नामक कविताओं में उसका यही रूप उभरता है। राधा के शब्दों में—

"यह तुमने क्या किया प्रिय।
क्या अपने अनजाने में ही
उस आम के बौर से मेरी क्वांरी उजली पवित्र मांग
भर रहे थे सांवरे।"[2]

अन्तरंग केलि सखी

"कनुप्रिया" में केलिसखी "शीर्षक से एक पूरी कविता राधा के व्यक्तित्व के इस पक्ष को प्रदर्शित करने के लिए रची गयी है। केलिसखी अर्थात् क्रीड़ा की सहगामिनी। कृष्ण की विलास क्रीड़ाओं का वर्णन, विद्यापति, चण्डीदास आदि कवियों ने भी किया है, किन्तु उनके काव्यों में केवल अनुभावों का चित्रण हुआ है। मानसिक प्रतिक्रियाओं का चित्रण उनमें नहीं मिलता है। राधा कहती है कि—

1- कनुप्रिया, पृ० 71

2- कनुप्रिया, पृ० 23

"मैं तुम्हारी जन्म-जन्मान्तर की सखी हूँ।"

इस भावोदात्य को भारती जी की "कनुप्रिया" में उभारा गया है। राधा कृष्ण की अन्तरंग प्रतिक्रियाओं की अनुचरी है। कनुप्रिया श्रेष्ठ केलिसखी है। जब लौकिक और पारलौकिक सबधों का लोप हो जाता है वहां पार्थिव सबंधों का महत्व ही नही रहता है। राधा जानती है कि वह प्रकृति हैं किन्तु प्रकृति निरीक्षण करने पर वह जड़ीभूत हो जाती है। उसका नारी मन उसे सशंकित कर देता है, किन्तु जहां इस शकातत्व से उसे मुक्ति मिल पाती है वही वह केलिसखी बनकर सामने आती है। जहां भी उसे असमन्जस से मुक्त होकर गोरा, रूपहला, धूपछांव वाली सीपी जैसा जिस्म एक पुकार लगा वहीं दिशाओं से बसाव में घुलने की वह अनुनय-विनय करती है तथा समय के अचूक धनुर्धर से धनुष तोडकर पख समेट कर प्रतीक्षा करने को कहती है। प्रतीक्षा भी तब तक जब तक प्रगाढ़ केलिकथा का अस्थायी विराम चिन्ह अधरों से वक्ष पर लिख कर शैथिल्य की बाहों में न सो जाय।

आत्म गौरव

"कनुप्रिया" की राधा को भी अपने महत्व का परिज्ञान है। वह भली-भांति जानती है कि कृष्ण उसके बिना अपूर्ण हैं, व्यर्थ है और उनका इतिहास सृजन का कार्य प्रपच मात्र है, क्योकि इन सब स्थितियो में राधा कृष्ण के साथ नही रही। वह कहती भी हैं कि—

> "बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता
> तुम्हारे इतिहास का
> शब्द-शब्द-शब्द
> राधा के बिना
> सब
> रक्त के प्यासे
> अर्थहीन शब्द।"

राधा के मूल्यांकन की कसौटी भी सबसे भिन्न एवं अद्भुत चरम तन्मयता का वह क्षण ही है जो एक स्तर पर सारे इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है, जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है। इस प्रकार समस्त बाह्य अतीत, वर्तमान और भविष्य-सिमट कर उस क्षण

1- कनुप्रिया, पृ० 73

में पुंजीभूत हो गया है और हम, हम नहीं रहे। राधा की भावाकुल तन्मयता में उसकी स्वभावज और यौवन जनित पावनता ही व्यक्त हुई है।

विरहोन्मादिनी

राधा विप्रलब्धा नायिका के रूप मे भी दिखायी पड़ती है। जब कनु उसे छोड़कर युद्ध में चले जाते हैं तब वह न चण्डीदास की राधा की भांति पछाड़ें खाती है न विद्यापति की राधा की तरह विक्षिप्त सी रहकर अश्रुओंसे आंचल गीला करती है। भारती जी ने विरहिणी राधा के विरह भाव का उदात्तीकरण किया है। वैसे हरिऔध जी 'प्रिय प्रवास" में राधा के विरह भाव को उदात्त स्वरूप में चित्रित कर चुके है। डा० गुप्त के शब्दों में—"कृष्ण के विलग होने पर राधा के उर में उदात्त भावों की उत्पत्ति होती है। उन्हे सम्पूर्ण जगत कृष्णमय प्रतीत होता है। —— अन्ततः वे श्याम को विश्वमय देखने लगती है और विश्व प्रेमिका तथा लोक सेविका बन जाती हैं।"[1] यहा राधा के विरह को एक वेदना के रूप में ही नही अपितु चेतना के रूप में चित्रित किया गया है।
कनुप्रिया के ही शब्दों में—

> "अब सिर्फ मैं हूं यह तन है
> और संशय भी।"[2]

राधा सहज सवेदनशील और समर्पणेच्छु है। वह पूर्ण समर्पित होने के कारण ही साक्षात्कार के क्षणों में लीन नही होना चाहती। वह तो बार-बार रीत जाने के लिए आकांक्षी है जिससे वह "मैं" की सकुचित अनुभूति से मुक्त हो सके। राधा स्वयं यह मानती है कि मिलन के क्षणो में जिस्म के बोझ से मुक्ति हो जाती है और देह एक आकारहीन, वर्णहीन, रूपहीन सगुंध मात्र रह जाती हैं—

> "तुम्हारे शिथिल आलिंगन में
> मैंने कितनी बार इन सबको रीतता हुआ पाया है
> मुझे ऐसा लगा है
> जैसे किसी ने सहसा इस जिस्म के बोझ से
> मुझे मुक्त कर दिया है
> और इस समय मैं शरीर नहीं हूं

1- डा. देवीप्रसाद गुप्त-आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य, पृ० 74
2- कनुप्रिया, पृ० 57

मैं मात्र एक सुगंध हूं।"[1]

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि "कनुप्रिया" की राधा परम्परागत काव्यों की राधा से भिन्न एवं अद्भुत व्यक्तित्व की धनी है। उसका व्यक्तित्व पूर्वराग, मंजरी परिणय, सृष्टि-सकल्प, इतिहास और समापन इन विविध सोपानों के रूप में कैशोर्य सुलभ मनः स्थिति से उपज कर शनैः शनै. विकसित हुआ है। वह सखी सहोदरा, सहचरी, मां तो है ही इसके साथ ही साथ मुग्धा, अभिसारिका, केलिसखी विप्रलब्धा एवं प्रौढ़ नारी के रूप में भी परिलक्षित होती है। इन सबसे भिन्न युगीन संवेदना की संवाहिका सवेदनशील रमणी के रूप में कनुप्रिया का चित्रण करके लेखक ने कला की चरमोपलब्धि को संस्पर्श किया है। सच तो यह है कि राधा उस अमूल्य क्षण को खोना नहीं चाहती है जब वह दोपहर के सन्नाटे में निर्वसन होकर घण्टो तक जल में अपने वेतसलता से कापते तनविम्ब के चारों ओर यमुना की सावली गहराई को अपने प्रिय के श्यामल प्रगाढ़ और अथाह आलिंगन के रूप मे कल्पित करती है। यहीं पर राधा का इहलौकिक रूप प्रगट होता है। राधा गृह कार्य से अलसाकर अनमनी, उदास, अस्तव्यस्त एवं शिथिल-सी कदम्ब की छाह में पड़ी रहती हैं। उसे इस बात का बहुत ही पश्चाताप है कि पूस की रात वेणुवादन की लय पर कृष्ण के नील जलज तन की परिक्रमा करती हुई वह क्यों लौट आई ? कनु को कण-कण सौंप कर रीत क्यों न गयी ? इन पंक्तियों में राधा का लौकिक रूप द्रष्टव्य है—

> "पर हाय वही सम्पूर्णता तो
> इस जिस्म में एक-एक कण में
> बराबर टीसती रहती है,
> तुम्हारे लिए
> कैसे हो जी तुम ?"[2]

जन्म जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की एकान्त संगिनी कनुप्रिया का लज्जायुक्त भव्य रूप भी काव्य में चित्रित हुआ है। जहां वह परम साक्षात्कार के क्षणों में जड़ और निस्पन्द हो जाती है वहीं वह स्वीकार करती है कि लाज केवल जिस्म की ही नहीं अपितु मन की भी होती है। उसे पूर्ण विश्वास है कि एक अज्ञात भय, अपरिचित संशय, आग्रह भरा

1- कनुप्रिया, पृ० 27

2- वही पृ०, 2

गोपन और सुख के क्षणों में घिर आने वाली निर्व्याख्या उदासी के अलंध्य अन्तराल को पार कर कृष्ण के पास जाएगी तो क्या कृष्ण उसे अपनी लम्बी चन्दन बाहों में भरकर बेसुध नही कर देंगे—

"एक अज्ञात भय,
अपरिचित संशय
आग्रह भरा गोपन
और सुख के क्षण
में भी घिर आने वाली निर्व्याख्या उदासी
फिर भी उसे चीर कर
देर में आऊंगी प्राण,
तो क्या तुम मुझे अपनी लम्बी
चन्दन बाहों मे भर कर बेसुध नहीं कर दोगे ?"[1]

कवि ने राधा के माध्यम से स्त्री–पुरुष के पारस्परिक सहयोग की दिशा एव स्वप्न के इतिहास–निर्माण की असफलता का उद्घोष भी किया है। स्वप्न में राधा ने विक्षुब्ध विक्रान्त युद्ध मुद्रा में आतुर लहरों को देखा। उसको कृष्ण कभी मध्यस्थ, कभी युद्धरत और कभी तटस्थ नजर आते थे और अन्त में थक कर शीतल जल के क्षणिक सुख की लालसा से तट की गीली बालू पर अपनी अंगुलियों से कुछ लिखते दिखायी देते हैं। समुद्र तट पर हाथ उठाकर कनु कुछ कह रहे हैं परन्तु उनकी कोई सुनता नहीं है और अन्त में हारकर-थककर मेरे वक्ष के गहराव मे अपना चौड़ा माथा रखकर सो गये हैं। कनु के होंठ धीरे-धीरे इस प्रकार हिलते हैं—

"न्याय, अन्याय, सद्सद्, विवेक अविवेक
कसौटी क्या है ? आखिर कसौटी क्या है ?"[2]

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि "कनुप्रिया" की राधा पारम्परिक भूमिका में स्थित होते हुए भी पूर्णतः नवीन सवेदना के अनुरूप काव्य में प्रस्तुत हुई है। इस काव्य की चरमोपलब्धि राधा के इस विलक्षण और सर्वथा मौलिक स्वरूप की उद्भावना ही है।

1- कनुप्रिया, पृ० 17

2- कनुप्रिया, पृ० 79

कृष्ण चरित्र

हिन्दी काव्य के सर्वोपरि प्रखर तथा शाश्वत पात्र के रूप में श्रीकृष्ण को ही स्वीकार किया गया है। उन्हें काव्यों में नीतिज्ञ, लोक रक्षक, परब्रह्म, गोपीवल्लभ, महामानव आदि रूपों में अंकित किया गया है। वास्तव में कृष्ण चरित्र भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में कृष्ण का नामोल्लेख विभिन्न स्थलों पर हुआ है। ऋग्वेद मे कृष्ण को अंगिरस नामक ऋषि तथा उनके पुत्रादि के रूप में उल्लिखित किया गया है। उत्तर वैदिक वाङ्मय में कंसारि रूप में कृष्ण की चर्चा है। छांदोग्य-उपनिषद् में भी कृष्ण को घोर अंगिरस के शिष्य तथा देवकी के पुत्र के रूप में संकल्पित किया है। औपनिषदिक एवं पौराणिक कृष्ण से महाभारत के कृष्ण भिन्न है। "महाभारतीय कृष्ण ने लोकजीवन में जो स्थान ग्रहण किया उसकी महत्ता के अनुरूप वे ईश्वर, नारायण के अवतार बन गये और अनेक कथाओं द्वारा इस स्वरूप की पुष्टि की गई।" [1] महाभारतेत्तर हरिवंश पुराण, भागवत पुराण आदि ग्रन्थों में कृष्ण चरित्र की ऐतिहासिकता का आभास तो मिलता है परन्तु पौराणिकता एवं धार्मिकता का आवरण ज्यों का त्यों बना हुआ है। बौद्ध जातकों तथा जैनागम आदि अवैष्णव ग्रन्थों में भी कृष्ण के दैविक रूप का संकेत मिलता है। 'हरिवंश पुराण' में सोलह हजार स्त्रियो के साथ जल क्रीड़ा करते हुए भोग विलास मे लिप्त कृष्ण का निरूपण हुआ है। हाल की गाथा सप्तशती में कतिपय गाथाएं कृष्ण के शृङ्गारी रूप की बोधक हैं। भागवत पुराण इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमे गोपाल कृष्ण, ब्रज विहारी रसिक कृष्ण, बालकृष्ण आदि विविध रूपों में कृष्ण का वर्णन प्राप्त है। कृष्ण के प्रमुख रूप इस प्रकार है—

विष्णु अवतार वासुदेव कृष्ण

महाभारतोत्तर काल में गीता सर्वाधिक उल्लेखनीय ग्रन्थ है जिसमें ईश्वर अवतार का मन्तव्य धर्म संस्थापना, दुष्ट विनाश तथा साधुनां परित्राण है; किन्तु पुराण काल में ईसा की ४थी–६ छठी शताब्दी तक वैष्णव भक्ति पद्धति के प्रभाव से यह विश्वास दृढ़ हो गया कि भगवान के अवतार का मुख्य उद्देश्य भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए लीलाओं का विस्तार करना है। इसके परिणाम स्वरूप कृष्ण के लोकरंजक बाल एवं किशोरी रूपों का महत्व बढ़ा और अन्यान्य भक्ति पद्धतियों के साथ माधुर्य भाव की प्रतिष्ठा हुई।

1- महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव

महाभारत के आदि पर्व में उल्लेख है कि विश्ववंद्य महायशस्वी भगवान विष्णु जगत के जीवों पर अनुग्रह करने के लिए वसुदेव जी के यहां देवकी के गर्भ से प्रकट हुए। वे भगवान आदि अन्त से रहित, परमदेव सम्पूर्ण जगत के कर्त्ता तथा प्रभु हैं। अन्य स्थानों पर कृष्ण को नारायण कहा गया है। ईसा पूर्व की अन्तिम शताब्दियों में नारायणीय या पंच पात्र नाम से एक उपासना सम्प्रदाय प्रचलित था जिसमें नारायण की पूजा का प्रचलन था। विष्णु और नारायण सर्वथा पर्यायवाची शब्द हो गये और कृष्ण में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा हो गई। महाभारत में वर्णित विष्णु दशावतारों यथा-वाराह वामन, नृसिंह, राम, कृष्ण, परशुराम, हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि में कृष्ण की भी गणना की गयी है। वस्तुत. महाभारत मे कृष्ण को वीर, राजनीतिज्ञ, विद्वान् एव परोक्ष रूप में देवी अवतार भी स्वीकार किया गया है।

कृष्ण के देव रूप का विकास

कृष्ण सबंधी वृत्त को इंगित करने वाला सर्वाधिक प्राचीनतम ग्रन्थ पाणिनीकृत "अष्टाध्यायी" है। इसमे वासुदेव-अर्चना का वर्णन मिलता है। वासुदेव पूजा के अतिरिक्त संकर्षण, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध आदि महामानवों की पूजा का भी वर्णन मिलता है। सम्भव है कि प्रारम्भ में कृष्ण की तुलना में वासुदेव नाम अधिक प्रचलित रहा हो और धीरे-धीरे कृष्ण नाम लोकप्रिय हो गया। बौद्ध जातकों तथा अन्य ग्रन्थों में कृष्ण के लौकिक रूप के लिए कीन्ह तथा पूज्य रूप के निमित्त वासुदेव के शब्द मान्य रहे हैं।

वैष्णव भक्ति के विविध सम्प्रदायों में कृष्ण की मान्यता

कृष्ण की बाल लीला एवं गोपी-प्रेम को सर्वस्व मानकर दक्षिणी भारत में रामानुज, निम्बार्क, विष्णु स्वामी तथा मध्वाचार्य नामक प्रमुख आचार्यों ने रामानुज सम्प्रदाय निम्बार्क या सनक सम्प्रदाय, विष्णु स्वामी सम्प्रदाय, ब्रह्म तथा मध्य सम्प्रदाय स्थापित किये। बारहवीं शताब्दी में निम्बाकाचार्य तेलगु प्रदेश से आकर वृन्दावन में बस गये और इन्होने द्वैता द्वैतवादी सिद्धान्त मार्ग का निदेश कर.राधा-कृष्ण की उपासना का प्रचार किया.। वल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक श्री वल्लभाचार्य इन्ही की शिष्य परम्परा मे हुए जिन्होने कृष्ण भक्ति का अत्यधिक प्रचार-प्रसार किया।

इस प्रकार महाभारत से आधुनिक काल तक कृष्ण चरित्र के

विविध रूपों का परिवेशगत रूपायन हुआ। मध्यवर्ती कवियों में संकुचित साम्प्रदायिक विचार तत्व के कारण कृष्ण का लोक व्यापी एव चिरकालिक रूप न उभर पाया तद्युगीन कृष्ण वैष्णवी कृष्ण मे रह कर विभिन्न धार्मिक मतावम्बियों की वैचारिक प्रक्रिया का प्रतीक बन कर रह गये। वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म है। वे अविनाशी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अगोचर, अलक्ष्य, सर्वनियन्ता हैं। वे अविभाज्य हैं परन्तु स्वेच्छा से विभाज्य हैं। वे आनन्द स्वरूप आत्मानन्दहिताय लीला विस्तार करते हैं। उनकी इच्छा शक्ति ही वल्लभ सम्प्रदाय में योग माया या माया शक्ति है। वे ही राधा हैं।

कनुप्रिया में कृष्ण चरित

धर्मवीर भारती ने "कनुप्रिया" में कृष्ण के परम्परागत स्वरूप को यथावत् वर्णित किया है। यहां कृष्ण रसिक शिरोमणि तथा कूटनीतिज्ञ दोनो ही रूपों में निरूपित हैं। युद्ध की कूटनीति के सचालक कृष्ण मन्मथ क्रिया कलापों में पूर्णतः निपुण हैं। वे इतिहास के सर्जक भी है, प्रेमी भी है और जगत के कर्णाधार भी हैं। "कनुप्रिया" में कृष्ण परोक्षतः वर्णित है तथापि कथा में उनके महान् आदर्शों का वर्णन निरन्तर मिलता है। कवि ने कृष्ण की मान्यताओं को टूटे क्षण और रीते घट के तुल्य असफल करार दिया है। उनके स्वधर्म, कर्म, दायित्व को सवेदनशीलता के अभाव में आधुनिक समस्याओं के निकष पर कोरे, रगे हुए निरर्थक आकर्षक शब्द मात्र घोषित किया है। उनका पाप–पुण्य, धर्माधर्म, करणीय-अकरणीय न्याय–दण्ड, क्षमाशीलता वाला युद्ध असत्य माना है और उनके महान् व्यक्तित्व को नकारा गया है।

"कनु" का सबसे पहला परिचय चिरन्तन प्रेमी के रूप में मिलता है जो बाह्य रूप से निर्लिप्त-निर्विकार होकर भी अन्तर्मन मे रसिक शिरोमणि हैं। उन्हें राधा की प्रणामबद्ध अजली और बंकिम मुद्रा विस्मय–विमुग्ध कर अवाक् एव निश्चल बना देती है। वे रसेश शनैः शनैः राधा को पूर्णतः बांध लेते है क्योंकि उस सम्पूर्णता के लोभी की परितृप्ति अंश मात्र से कैसे होती ? कवि के शब्दों में—

"इस सम्पूर्णता के लोभी तुम
भला उस प्रणाम मात्र को क्यों स्वीकारते ?
और मुझ पगली को देखा कि मैं

तुम्हें समझती थी कि तुम कितने वीतराग हो
कितने निर्लिप्त ।"[1]

कृष्ण का प्रेम विचित्र है । जो वासना, एषणा शरीरजन्य इच्छाओं से सर्वथा लोकोत्तर आदर्शों पर ठहरा हुआ है। राधा के अधर, पलक, अंग-प्रत्यंग एवं सम्पूर्ण चम्पकवर्णी देह पारस्परिक तादात्मय का साधन मात्र है जिसकी अनुभूति चरम साक्षात्कार के क्षणों में नहीं रहती—

'सुनो तुम्हारे अधर, तुम्हारी पलकें, तुम्हारी बाहें, तुम्हारे चरण
तुम्हारे अग-प्रत्यग, तुम्हारी सारी चपकवर्णी देह
मात्र पगडडियां हैं जो
चरम साक्षात्कार के क्षणो में रहती ही नहीं
रीत-रीत जाती है ।"[2]

'आम्रबौर का अर्थ" में कृष्ण का अलौकिकत्व अभिव्यजित है जहां कनु पोई की जंगली लतरो के फलों को तोड़कर, मसलकर, उसकी लाली से राधा के पांवो में महावर लगाने के लिए अपनी गोदी में रखते हैं और राधा की क्वांरी उजली मांग को आम्रबौर से भरकर मंजरी परिणय करते है । यह प्रेम, सारे ससार से पृथक पद्धति का विशिष्ट प्रेम है जो आम्रबौर की लिपि में लिखा होने के कारण साधारण जन की समझ से परे है।"[3] पौराणिको की अवधारणा के अनुसार कनु विराट पुरुष हैं। समस्त सृजन उसकी शक्ति है । वे लोकोत्तर पुरुष विपरीत एवं विरोधी परिस्थितियों मे जीने मे पूर्ण रूप से समर्थ हैं । उन्होंने सहज प्रेम के तन्मयकारी क्षणों को भी अपनाया है। रास की रात सबको अंश मात्र ग्रहण करके सम्पूर्णत्व का

1- कनुप्रिया, पृ० 15

2- वही, पृ० 27

3- "हाय मैं सच कहती हूं
मैं इसे समझी नही, नही समझी, बिलकुल नही समझी ।
यह सारे संसार से पृथक पद्धति का
जो तुम्हारा प्यार है न
इसकी भाषा समझ पाना क्या इतना सरल है ।"
--कनुप्रिया, पृ० 31

बोध कराया है। वन्शी बजा-बजा कर मात्र टहनियों पर हाथ की कुहनी रखकर प्रियतमा की प्रतीक्षा में पथ निहारा है।

इस प्रकार राधा और कृष्ण का एक विशिष्ट सम्बन्ध है। राधा के लिए कनु सर्वस्व हैं। वे शरद शर्वरी में रास रचाते हैं। वह राधा तथा अन्य गोपियों को मुरली की धुन छेड़कर, वृक्षों की डालों पर कन्धा रखकर तथा प्रतीक्षारत रहकर बुलाता रहता है, और अंशतः ही स्वीकार कर सम्पूर्ण बना कर लौटा देता है। राधा कनु के इस अद्‌भुत व्यक्तित्व को समझ भी कैसे पाए ? कृष्ण विरोधी स्थितियों को जीने में समर्थ हैं। जबकि राधा ने समस्त को सहज की कसौटी पर कसना ही जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकारा है। निश्चय ही कृष्ण की ये चरित्र गत विषमताएं उनके उदात्त, अलौकिक तथा महनीय चरित्र की बोधक है। एक ओर वे जीवन के कोमल एवं कठोर पहलुओं को चुनौती देकर सन्त्रस्त ब्रजवासियों का परित्राण करते हैं तो दूसरी ओर घनघोर वर्षा से बचते हुए राधा के आंचल में शिशुवत् संरक्षण के इच्छुक हैं। कवि के शब्दों में—

"पर दूसरे ही क्षण
जब घनघोर बादल उमड़ आये है।
× × ×
तुम्हें सहारा दे देकर
अपनी बाहों में घेर कर गांव की सीमा तक तुम्हें ले आई हूं।
× × ×
तुम वही कान्ह हो
और सारे वृन्दावन को
जल प्रलय से बचाने की सामर्थ्य रखते हो ?
यह मैं आज तक न समझ पायी।"[1]

कृष्ण जो प्रेम के सहज क्षणों में अपना जीवन व्यतीत करने वाला है अन्ततः कितना परिवर्तित हो जाता है और युद्धजन्य विपाक्त वातावरण की ओर अपना ध्यान लगाने लगा है। कवि ने इसे भी पूर्णतः सत्य कर दिखाया है। महाभारत का अकल्पनीय विनाश लोकतारक कृष्ण को सोचने को बाध्य कर देता है कि युद्ध को साकार रूप देने में उसका भी हाथ है।

1- कनुप्रिया, पृ० 35

काश। दुर्योधन पैताने होता और अर्जुन सिरहाने तो यह भीषण नरसंहार रुक जाता।"[1] आज यह हारी हुई सेनाएं जीती हुई होती। सेनाओं का युद्ध-घोष, क्रन्दनस्वर तथा युद्ध की अमानवीय-अकल्पनीय घटनाओं की सार्थकता पर कृष्ण को स्वयं सन्देह है। कृष्ण की यह निराशाजनक चिन्तन-प्रक्रिया युद्ध के बाद मानव मूल्यों के विघटन से उद्भूत अराजकता की उपज है।

"कनुप्रिया" के अन्तिम दो अंशों-'इतिहास" और "समापन" में इतिहास पुरुष कृष्ण को कवि ने सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। यहा कृष्ण के इतिहास-निर्माण की असफलता दिखाकर प्रेम समर्पण, त्याग, विश्वास एवं तन्मयकारी क्षणों को प्रतिष्ठा को बल दिया है। "समुद्र-स्वप्न" खण्ड में वर्णित निर्जीव सूर्य निष्फल सीपियों, निर्जीव मछलियां युद्धकालीन विषाक्त वातावरण की द्योतक हैं—

> "विष भरे फेन, निर्जीव सूर्य, निष्फल सीपियां, निर्जीव मछलियां
> लहरें नियन्त्रण होती जा रही हैं
> और तुम तट पर बांह उठा-उठा कर कुछ कह रहे हो।
> पर तुम्हारी कोई नही सुनता, कोई नहीं सुनता।"[2]

युद्ध के इस भयानक वातावरण में कोई भी कृष्ण की मान्यताओं को सुनने के लिए तैयार नही है। कृष्ण भी इस भयकर दृश्य को देखकर कोई निर्णयात्मक तर्क नही दे पाये। जुए के पासे की भांति निर्णय फेंक देना ही इतिहास पुरुष कृष्ण की बौखलाहट का व्यंजक है। "समापन" खण्ड मे "कनुप्रिया" को इतिहास के बदलाव का काव्य सिद्ध किया गया है। यहां लीलामय, भक्त संरक्षक, जग का उद्धार करने वाले कृष्ण का आधुनिक रूप द्रष्टव्य है। वहां इतिहास निर्माण कृष्ण के चरित्र को दोषमुक्त दर्शाकर एवं कृष्ण के तन्मयतापूर्ण प्रेम को उचित ठहराया है। अपनी शक्ति (राधा) के बिना कनु इतिहास निर्माण मे पूर्णरूपेण असफल हो

1- "यदि कहीं उस दिन मेरे पैताने
दुर्योधन होता तो — आह
इस विराट समुन्द्र के किनारे ओ अर्जुन, मैं भी
अबोध बालक हूं।"
—कनुप्रिया, पृ० 75

2- कनुप्रिया, पृ० 74

जाते हैं। इसलिए असफल इतिहास को जीर्ण वसन की भांति त्यागकर, आत्मलीन होकर राधा को स्मरण करते हैं। सचमुच तभी राधा की वेणी में अग्निपुष्प गूंथने वाली उंगलियां इतिहास में नया अर्थ गूंथ सकने में समर्थ हो सकेंगी।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि "कनुप्रिया" मे कृष्ण को रसिक शिरोमणि एवं महाभारतीय दोनों ही रूपों में प्रस्तुत किया गया है। कवि ने कृष्ण चरित्र को अस्तित्ववादी दर्शन की कसौटी पर कसा है। कृष्ण के परम्परागत चरित्र पर अस्तित्ववादी दर्शन की विजय दर्शायी गयी है। परन्तु अस्तित्विक दर्शन की विविध प्रवृत्तियो का निर्वाह करने मे भारती जी पूर्णतः सफल नही हुए हैं। यह कहना अधिक सगत होगा कि कवि ने पौराणिक एव महाभारतीय कृष्ण पर बलात् अस्तित्ववादी चिन्तन की मान्यताओं को आरोपित करने का प्रयास किया है।

राधा-चरित्र : तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में

सभी कवियों ने राधा–कृष्ण के चरित्र विधान द्वारा अपनी लेखनी को धन्य किया है। सच तो यह है कि ब्रज भाषा काव्य के प्रारम्भ काल में राधा इतिहास तत्व की वस्तु नहीं रह गयी थी। "वे सम्पूर्ण भाव जगत की चीज हो गयी थी।"[1] यही कारण है कि अष्ट छाप के कवियों ने श्री बल्लभाचार्य द्वारा राधा का उल्लेख न होने पर भी उनका अपने काव्य में निरूपण किया। राधा सम्बन्धी भक्ति भावना का मत अष्ट छाप के कवियों ने विट्ठलनाथ जी से ग्रहण किया था। डा० दीनदयाल गुप्त लिखते हैं— "श्री बल्लभाचार्य ने गोपियों के प्रकार बताते हुए राधा नाम की स्वामिनी स्वरूपा गोपी का उल्लेख नहीं किया, उन्होंने अन्य किसी ग्रन्थ में राधा का उल्लेख नहीं किया राधा के नाम का समावेश श्री विट्ठलदास जी ने अपने सम्प्रदाय में किया था। अष्ट छाप के कवियों ने गोस्वामी विट्ठलदास जी के मत को इस संबंध में ग्रहण किया है।"[2] सूर और नन्ददास आदि कवियों ने भक्तिकाल में राधा की जिस रूप माधुरी का चित्रण शुरू किया था उसमें भक्ति और शृंगार का सुन्दर सामजस्य था। आगे चलकर रीति-

1- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—सूर साहित्य, पृ० 21

2- डा० दीनदयाल गुप्त—अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय, पृ० 508

कालीन कवियों ने दरबारी वातावरण तथा अन्य कुछ कारणों से राधा को नायिका के रूप में चित्रित करना प्रारम्भ किया।

आधुनिक काल मे पुनः भारतेन्दु से राधा के रमणीय रूप का संयत चित्रण प्रारम्भ हुआ है। हरिऔध जी ने राधा के चरित्र-विश्लेषण में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण का परिचय दिया है। "प्रिय प्रवास" की राधा जहां परिणय की प्रतिमा है वही वे लोक सेविका भी हैं। उनके चरित्र का विकास प्रेम और कर्तव्य की पवित्र भूमि पर हुआ है। डा० देवीप्रसाद गुप्त के शब्दो में "राधा की चरित्र कल्पना द्वारा निश्चय ही हरिऔध जी ने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रणय, विरह और त्याग की त्रिवेणी में स्नात राधा का चरित्र भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिमा है।"[1] "जयदेव की राधा के समान उनमें प्रगल्भ व्याकुलता नहीं हैं, विद्यापति की राधिका के समान उनमें मुग्ध कूतूहल और अनभिज्ञ प्रेम लालसा नही है, चण्डीदास की राधा के समान उनमें अधीर कर देने वाली गलद्वाष्पा भावुकता भी नही है कोई सहज हृदय इन सभी बातों को उनमें एक विचित्र मिश्रण के रूप में अनुभव कर सकता है।"[2] राधा ने भगवान की भक्ति का नवीन रूप ग्रहण किया है। नवधा-भक्ति की नवीन व्याख्या की। डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा के शब्दों में—"कृष्ण से विलग होने पर राधा के प्रेम का उदात्तीकरण मानव जाति एवं समस्त लोक के प्रति प्रेम की भावना के रूप में हो जाता है और वे प्रत्येक वाणी एवं प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में कृष्ण के ही रूप का दर्शन करती है।"[3] इन सब कवियों की तुलना मे भारती की कनुप्रिया में राधा का चरित्र अतिविशिष्ट है।

निष्कर्ष

"कनुप्रिया" की राधा के चरित्र में रग भरते समय कवि ने

1- डा० देवीप्रसाद गुप्त—हिन्दी महाकाव्य: सिद्धान्त और मूल्यांकन, पृ० 151

2- हरिऔध अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० 461

3- डा० रविन्द्र महाय वर्मा—हिन्दी साहित्य पर आंग्ला-प्रभाव, पृ० 161

मनो-वैज्ञानिक आधार ग्रहण किया है। कवि ने दर्शाया है कि राधा का चरित्र दमित वासनाओं के विस्फोट से आक्रान्त सा दिखलाई पड़ता है। इस चरित्र विधान से यही ध्वनित होता है कि शारीरिक सुख और यौन तृप्ति का महत्व शून्य नहीं है। कवि भारती ने राधा के ऐन्द्रिक लालसा-पूर्ण चरित्र के माध्यम से व्यक्ति जीवन में काम तृप्ति की आवश्यकता की ओर संकेत किया है जो नवलेखन की प्रवृत्तियों के सर्वथा अनुरूप है। कनु-प्रिया की अनास्थापूर्ण मनोवृत्ति का परिचय स्वप्न के नाटकीय प्रसग के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। निश्चय ही कनुप्रिया का चरित्र मनो-विज्ञान, दर्शन और कामाध्यात्म की समन्वित भूमिका पर प्रतिष्ठित होने के कारण आधुनिक हिन्दी काव्यों की परम्परा में विरल है।

५

शैल्पिक प्रतिमानों की दृष्टि से मूल्यांकन

"कनुप्रिया" कथ्य मूलक सन्दर्भो तथा चरित्र-विधान की दृष्टि से ही विशिष्ट नही अपितु शैल्पिक प्रतिमानों की दृष्टि से भी अप्रतिम है। इस तथ्य की सपुष्टि हम इस प्रबन्ध काव्यकृति का रूप विधायक तत्वो की दृष्टि से मूल्यांकन करके कर सकते हैं।

भाषात्मक संरचना का स्वरूप

"कनुप्रिया" प्रबन्ध काव्य है। इसमे राधा और कृष्ण की प्रणय कथा आधुनिक शब्दावली में कही गई है। प्रणय में जिस सहजता और सरलता पर विशेष बल दिया गया है वही सहजता भाषा-शैली मे भी दिखायी देती है। "कनुप्रिया" की भाषा कृत्रिमता से दूर औचित्यपूर्ण शब्द विधान से सज्जित और प्रवाहपूर्ण शैली में विरचित है। कवि भाषात्मक प्रयोगो में चमत्कारो से दूर रहा है। अत "कनुप्रिया" की भाषा में जहाँ एक ओर मार्दव है, सचिक्कणता है तो दूसरी ओर उसमें सप्रेषणीयता और शक्तिमत्ता भी भरपूर है। शब्दो की ऐसी सगति और विशेषणों के ऐसे सार्थक प्रयोग किये गये हैं कि किसी भी शब्द का स्थानापन्न दूसरा शब्द नही बन सकता है। क्रम-क्रम से कवि ऐसे शब्दों को चुनता गया है कि प्रसंग और भाव सर्वत्र साकार होता परिलक्षित होता है। भारती की काव्य भाषा सर्वत्र भावानुगामिनी है। "दूसरा-सप्तक" मे अपने वक्तव्य में उन्होंने लिखा भी है कि—'भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिए,

बस। न तो पत्थर का टोंका बनकर कविता के गले में लटक जाय और न रेशम का जाल बनकर उसकी पाखों में उलझ जाए।"[1] वस्तुतः भाषा जिस सीमा तक प्रभावी, अभिव्यंजक, सम्प्रेषणीय तथा सवेद्य होगी, कथ्य उतना ही सक्षम होगा। साहित्यिक दृष्टि से तो भाषा का सहज सवेद्य होना नितान्त अनिवार्य है। इस दिशा में सर्वप्रथम सप्तकीय कवियों ने ही पहल करते हुए नये अर्थ, नये बोध एवं नये मापदण्डों से अनुभूतियों को कलात्मक स्वरूप दिया। "तार सप्तक के प्रयोगकर्त्ता अज्ञेय ने अभिव्यंजना के परम्परागत मूल्यों को अपर्याप्त घोषित करते हुए बतलाया है कि जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुंचाया जाय– यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।"[2] काव्य की भाषा अलग होती है या होनी चाहिए यह वह नही मान सकता। प्रश्न केवल शब्द चयन का नही है, वाक्य रचना का है, योजना का है, अन्विति का है।[3] भारती भी भाषा के व्यावहारिक रूप के सबंध मे अज्ञेय की वैचारिक सरणी के अनुकर्त्ता है। भारती की मूल सवेदना आधुनिकता की वह सीढी हैं जिस पर कवि के मन की असंख्य परतें भाव और ज्ञान को लेकर ढहती नहीं अपितु खुलती चली जाती है।

'कनुप्रिया' में आद्यन्त भाषा का नवसंस्कारित रूप उजागर हुआ है। इनके काव्य की भाषा मे ऐसा सहज प्रवाह है जो काव्य के पुन पुनः पठन के लिए पाठक को प्रेरित करता है। कवि ने प्रसंगानुसार शब्दों का चयन किया है और बिना किसी झिझक के उन शब्दों का प्रयोग किया है। 'कनुप्रिया' मे पीर्इ' तिस, बनवासों, पछतावें जैसे अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनसे केवल स्वाभाविकता की ही रक्षा नही हुई बल्कि भाषात्मक शिल्प योजना के सौन्दर्य में भी अभिवृद्धि हुई है। 'कनुप्रिया' की भाषा सरल और सुबोध है। उसमें प्रयुक्त शब्दावली दो प्रकार की है– संस्कृत गर्भित और बोलचाल की सामान्य प्रभावी शब्दावली। कतिपय स्थलों पर तत्सम और तद्भव शब्दों के मेल से बनाये गये शब्द-युग्म भी दृष्टिगत होते हैं। भारती के संस्कार रोमानी है। अतः उनकी इस कृति में उर्दू के शब्दों

1- दूसरा सप्तक, पृ० 167
2- तार सप्तक, पृ० 75
3- डा० कान्तिकुमार– नयी कविता, पृ० 116

की भी भरमार है। भाषात्मक संरचना विधान की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं—

लाक्षणिकता

'कनुप्रिया' की भाषा मे लाक्षणिक प्रयोगों की भरमार है। अनेक लाक्षणिक प्रयोग तो अत्यन्त मार्मिक और चित्ताकर्षक बन पड़े हैं। कुछ लाक्षणिक प्रयोग मुहावरो के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। जैसे- धरती में गहरे उतरी हूं, रेशे-रेशे में सोई हूं, धूल में मिली हूं, पंख पसार कर उड़ूंगी आदि। ये प्रयोग लाक्षणिकता के कारण पाठकों का मन मोह लेते हैं। इन्ही प्रयोगो के बीच में व्यंग्य-वक्रता भी आ गई है। जैसे—

> 'कर्म स्वधर्म निर्णय और दायित्व जैसे शब्द
> मैंने भी गली-गली में सुने हैं।" [1]

एक अन्य लाक्षणिक प्रयोग द्रष्टव्य है—

> "वह मेरी तुर्शी है जिसे तुम विशेष प्यार करते हो
> × × ×
> कण-कण अपने को तुम्हें देकर रीत क्यों नहीं गयी ?" [2]

नाद-सौन्दर्य

कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। कई स्थलों पर मनोनुकूल दृश्य निर्मित करने के लिए उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिससे नाद सौन्दर्य की सर्जना हो गयी है। 'छितवन की छांह', 'घन घुंघराले बाल', 'अलघ्य अन्तराल' जैसे प्रयोगो में यह उत्कृष्टता दिखाई देती है। निम्नोद्धृत काव्यांश में यह विशेषता देखी जा सकती है—

> "मैं तुम्हारी नस-नस मे पंख पसारकर उड़ूंगी
> और तुम्हारी डाल-डाल में गुच्छे-गुच्छे लाल-लाल
> कलियां बन खिलूंगी ?
> × × ×
> और बैठे रहे, बैठे रहे, बैठे रहे
> मैं नही आयी, नहीं आयी, नही आयी।" [3]

1- कनुप्रिया, पृ० 70
2- वही, पृ० 17
3- कनुप्रिया, पृ० 11

मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग

'कनुप्रिया' की भाषा को सरस एवं मधुर बनाने के लिए लोक-प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है। यद्यपि इसका प्रयोग संख्या की दृष्टि से बहुत कम है फिर भी ये काव्य में उचित वैचित्र्य एवं अर्थगाम्भीर्य की वृद्धि अवश्यमेव करते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि 'कनुप्रिया' में वर्ण्यविषय ही मुहावरों एवं लोकोक्तियों के उपयुक्त न था। इसका कारण यह भी है कि छोटी सी गेय रचना के अन्तर्गत इतनी गेयात्मकता है कि कृतिकार लाक्षणिकता, व्यंग्यवक्रता प्रतीकात्मकता आदि अभिव्यंजना में सहायक तत्वों तक ही सीमित रह गया है। लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग से भाषा की प्रेषणीयता बढ़ी है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—हाथ को हाथ न सूझना, मुंह लगी नादान मित्र, आसमान से उतरना, गगनचुम्बी मीनारें आदि।

बोलचाल की शब्दावली

"कनुप्रिया" में एक ओर तो संस्कृतनिष्ठ शब्दावली है तथा दूसरी ओर बोल चाल के ऐसे प्रभावी शब्दों का संयोजन कृति में किया गया है जो पाठक का मन मोहते हुए अर्थ को सहजता के साथ सम्प्रेषित करते हैं। यथा—

> "मेरे अधखुले होंठ कांपने लगे हैं
> और कंठ सूख रहा है
> और पलकें आधी मुंद गयी हैं
> और सारे जिस्म में जैसे प्राण नहीं है।
> मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है
> और जकड़ती जा रही हूं
> और निकट, और निकट।"[1]

इसके किसी भी काव्यांश में बोलचाल के शब्दों का अभाव नहीं है। इनको खोजना नहीं पड़ता है। प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर ऐसी सरल शब्दावली मिल ही जाती है। यह शब्दावली सरल अवश्य जान पड़ती है परन्तु इसके पीछे जो भाव हैं और उनकी जो अर्थवत्ता है, वह बड़ी आकर्षक और प्रभावी है।

उर्दू शब्दों का प्रयोग

रोमानी भावों की अभिव्यंजना में उर्दू, फारसी के लचक और

1- कनुप्रिया, पृ० 51

नजाकत भरे शब्द भी कनुप्रिया में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। जैसे—जिस्म, महक, तुर्शी, टीस, दर्द, देह, अजीब, गुमान, माया, ताजा, नादान, जिद, घायल, गोद, बेबस, बेचैन, अवसर, कसम, काश, आहिस्ता, आबाद, बांह, उसास, हवा, सिर्फ, जादू, राह, नशीले, हिचक आदि। इन शब्दों से भारती ने भाषा को असरदार बनाने का प्रयत्न किया है।

चित्रात्मकता

"कनुप्रिया" की भाषा का एक गुण चित्रात्मकता है। इस काव्य कृति में भाषा की चित्रमयता स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होती हैं। इससे भाव एवं भाषा दोनों ही चमक उठे है। कही स्पर्श, कही रंग और कहीं घ्राणेन्द्रिय से सम्बद्ध अनेक चित्र कनुप्रिया की भाषा को न केवल प्रेषणीयता प्रदान करते हैं अपितु भावोपमता और मादकता भी प्रदान करते हैं। आलिंगन के क्रमिक रूप में कसते जाने की स्थिति का जीवन्त चित्र द्रष्टव्य हैं—

> 'और यह मेरा कसाव निर्मम है
> और आधा और उन्माद भरा और मेरी बातें
> नाग वधू की गुंजलक की भान्ति
> कसती जा रही है
> और तुम्हारे कन्धो पर बाहों पर होठो पर
> नाग वधू को शुभ्रदत्त शक्ति के नीले-नीले चिन्ह उभर आये।"[1]

'कनुप्रिया" के शब्द-विधान में कोमलता और माधुर्य के समावेश के लिए बोल चाल के प्रादेशिक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इसी के साथ-साथ भाषा मे प्रतीकात्मकता और भावानुकूलता भी है। माधुर्य गुण की प्रधानता होते हुए भी कही-कही ओज एव प्रसाद आ गये हैं। कहीं-कहीं "कनुप्रिया" की भाषा में सामासिक शब्दो का प्रयोग भी कुशलता से किया गया है।

शैलीगत विशेषताएं

"कनुप्रिया" मे अनेक शैलियो का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ भावावेश शैली, चित्रात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, प्रश्न शैली, सम्बोधन शैली, व्यंग्य शैली, लाक्षणिक शैली, सवाद शैली, तर्क शैली, आलंकारिक

1- कनुप्रिया, पृ० 51

शैली आदि कितनी ही शैलियों की व्यंजना काव्य में हुई है। डा० हरीचरण शर्मा के शब्दों में—"कनुप्रिया की शैली में नाटकीयता है, जो परिवेश की गतिशीलता और उसके उत्थान-पतन को व्यक्त करती है। यह नाटकीय शैली भावों को व्यक्त करने में पूरी तरह सफल है।"[1] "कनुप्रिया" की भाषा-शैली में आये भाव एवं प्रसंग के अनुरूप ही शैलियों में वैविध्य है। ये शैलियां स्वाभाविक अलंकृति से युक्त है। इन काव्य शैलियों के सहारे ही कवि ने उदात्त भावों एव कथ्य को आधुनिक बोध के स्तर पर पहुँचा दिया है।

अलंकार विधान

'कनुप्रिया" में सादृश्य-मूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। इनमे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अप्रस्तुत योजनाओं से शिल्प सौन्दर्य मे तो अभिवृद्धि हुई ही है साथ ही भावगत सौन्दर्य को भी उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। यहां यह उल्लेखनीय है कि उपमाएं, रूपक, उत्प्रेक्षाएं आदि सर्वत्र नव्यता की परिमापक हैं।

उपमा

'कनुप्रिया" में अनूठी उपमाएं प्रयुक्त हुई है। इनमें धर्म, प्रभाव, रंग, गुण आदि दृष्टियों से साम्य है। विषय को प्रभावी बनाने के लिए कहीं-कहीं तो उपमाओं की झड़ी लगा दी गयी है। उपमा अलंकार के कुछ उदाहरणों से लेखक की काव्य-प्रतिभा का बोध होता है। यथा—

'मांग सी उजली पगडंडी,

× × ×

वेतसलता सा कांपता तन बिम्ब

× × ×

मन्त्र पढ़ बाण से छूट गये तुम तो कनु

शेष रही कांपती प्रत्यचा सी मैं।"[2]

वियोगिनी राधा के म्लान, उदास एव शून्य चेहरे के लिए लाए गये ये उपमान अपनी सहजता और मौलिकता में विरल हैं। इस प्रकार के सार्थक उपमान नयी कविता में बहुत ही कम मिलेंगे। यथा—बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चान्द, रीते हुए पात्र आदि।

1- नयी कविता : नये धरातल, पृ० 213
2- कनुप्रिया, पृ० 58

रूपक-प्रयोग

"कनुप्रिया" में प्रयुक्त रूपक भी आकर्षक हैं —

"यह जो अकस्मात्
आज मेरे जिस्म के सितार के
एक-एक तार मे तुम झंकार उठे हो।"

इसमें रूपक और उपमा का मिश्रित रूप भी आकर्षक बन पड़ा है —

'राधन्! ये पतले मृणालसी तुम्हारी गोरी अनावृत बाहें
पगडंडिया मात्र हैं।"[1]

विरोधाभा

"कनुप्रिया" में कुछ स्थानो पर विरोधाभास अलंकार का भी सार्थक प्रयोग हुआ है। जैसे—

(अ) "वह जिसे भी रिक्त करना चाहता है, उसे सम्पूर्णता से भर देता है।"

(आ) "अशतः ग्रहण कर सम्पूर्ण बनाकर लौटा देते हो।'

उत्प्रेक्षा

"मानों यह यमुना की सांवली गहराई नही है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारो ओर कण-कण, रोम-रोम
अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर-पोर
कसे हुए हो।"[2]

मानवीयकरण

"यह सुनते ही लहरें
घायल सांपों सी लहर लेने लगती है
और फिर प्रलय शुरू हो जाती है।"[3]

स्मरण

"अब सिर्फ मैं हूं यह तन है और याद है

1- कनुप्रिया पृ० 27
2- वही, पृ० 16
3- वही, पृ० 75

खाली दर्पण में धुंधला सा एक प्रतिबिम्ब
मुड़-मुड़ कर लहराता हुआ
निज को दोहराता हुआ।"

उदाहरण

"यह मेरा कसाव निर्मम है
और अन्धा और उन्माद भरा और मेरी बाहें
नाग वधू की गुंजलक की भांति
कसती जा रही है।"[1]

दृष्टान्त

'और तुम व्याकुल हो उठे हो
धूप में कसे
अथाह समुद्र की उत्ताल, विक्षुब्ध
लहराती लहरों के निर्मम थपेड़ों से
छोटे से प्रवाल द्वीप की तरह
बेचैन।"[2]

अलंकारों का दुहरा प्रयोग

इस दृष्टि से तो कहीं-कहीं लेखक ने असाधारण क्षमता का परिचय दिया है जहां उसने दो-दो-तीन-तीन अलंकारों का प्रयोग एक साथ एक विशेष स्थिति को उभारने के लिए किया है। अलंकारों के दुहरे प्रयोग से भाव दृश्य के कारण परिवेश उभर कर मूर्ताकार हो गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास आद्यान्त ही कृति में छाया हुआ है। वर्णों शब्दों और वाक्यों की आवृत्तियों से "कनुप्रिया" में माधुर्य और मोहकता संवृद्ध हुई है। यथा—

"यदि कोई है तो वह केवल तुम, केवल तुम, केवल तुम
अथवा
और तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ हूं
केवल मैं! केवल मैं!! केवल मैं!!!"[3]

1- कनुप्रिया, पृ० 58
2- वही, पृ० 51
3- कनुप्रिया, पृ० 44

अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से भारती एक सफल रचनाकार है। उन्होंने पाश्चात्य एवं पौर्वात्य दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। अलकारों के प्रति उनमें न कोई बहक है और न अभ्याहृत लगाव, किन्तु जहां भी कथ्य को प्रभावी एवं सम्प्रेषणीय बनाने के लिए आवश्यक हैं उसे अवश्य स्वीकारा गया है। उपमानों की माला जिस सुन्दरता के साथ 'कनुप्रिया' मे पिराई गयी है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। निश्चय ही "कनुप्रिया" अलकार-योजना की दृष्टि से अनुपम प्रबन्ध काव्यकृति है।

बिम्ब योजना

नयी कविता शिल्पिक प्रतिमानों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान बिम्ब का है। बिम्ब को "अर्थ चित्र", "मानचित्र" अथवा 'कल्पना चित्र' कहा जाता है। बिम्ब मनोविज्ञान और साहित्य दोनों का ही विषय है। "बिम्ब का अर्थ मानसिक पुनरोत्पति या स्मृति के आधार पर व्यतीत का सावयव-पुनर्नु भय लिया जाता है।"[1] साहित्य में बिम्ब का अर्थ कलाकार की उस क्षमता से है जिसके आधार पर वह अतीत की घटनाओं और विषय वस्तु को रंग, ध्वनि, गति, आकार-प्रकार सहित देश, काल परिस्थिति को ध्यान में रखकर शब्द चित्रो में वर्णित कर देता हैं।"[2] ल्यूइस ने एक स्थान पर बिम्ब का विवेचन करते हुए लिखा है—"काव्य में बिम्ब उस दर्पण शृंखला की भांति है जो विभिन्न कोणों पर रखे हुए विषय वस्तु को विभिन्न रूपों में प्रतिबिम्बित करते हैं।"[3] "श्री नारायण कुट्टि के शब्दों में – अभिव्यंग्य चाहे मूर्त हो या अमूर्त, शब्द-रचित मूर्त-बिम्बों के रूप में उपस्थित करने की शैली को ही बिम्ब योजना कहते है।"[4] कविता मे बिम्ब का मुख्य कार्य अप्रस्तुत की रूप प्रतिष्ठा है।" बिम्ब के द्वारा ही कविता में संक्षिप्तता, वास्तविकता की प्रतिष्ठा, थोड़े मे बहुत का बोध, अनेक अर्थों की सम्भावना आदि सम्भव है।"[5] प्रो० कुमार के शब्दो में—'काव्य में रूपक, उपमा, मानवीयकरण, समासोक्ति, मुहावरे, लोक कथा, प्रतीक आदि के द्वारा बिम्बो को ही स्पष्ट किया जाता है। इसका कारण यह है कि बिम्ब

1- डा० कैलाश वाजपेयी—आधुनिक हिन्दी कविता मे शिल्प, पृ० 78
2- स्टीफन जे० ब्राउन—वर्ल्ड आव इमेजरी, पृ० 1–2
3- सी० डी० ल्यूइस-द पोइटिक इमेज, पृ० 80
4- हिन्दी की नयी कविता, पृ० 138
5- सुरेशचन्द सहल--नयी कविता और उसका मूल्यांकन, पृ० 14

हमारी पूर्वानुभूतियों एवं भावनाओं का ही मूर्तिकरण जिनमें ऐन्द्रिकता अपेक्षित रहती है।"[1] भारती एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों ने एकमत से बिम्ब की महत्ता को स्वीकार किया है। डा० जगदीश गुप्त ने—'प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र में बिम्ब का समानधर्मी शब्द "अर्थ-चित्र" को मानते हुए संस्कृत साहित्याचार्यों की एतद्विषयक मान्यताओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।"[2] बिम्बों को अनेक वर्गों में विभक्त किया गया है। डा० कैलाश वाजपेयी ने बिम्बों के निम्नांकित भेद माने हैं—दृश्य-बिम्ब, वस्तु बिम्ब, भाव बिम्ब, अलंकृत बिम्ब, सान्द्र-बिम्ब, विवृत-बिम्ब आदि।"[3]

"कनुप्रिया" में चाक्षुष, ऐन्द्रिय और अलकृत बिम्ब तो मिलते ही हैं, कहीं-कहीं ऐसे बिम्ब भी मिलते हैं जो शारीरिक स्पन्दन को अभिव्यक्त करते हैं। ये सभी बिम्ब भावात्मक और काव्यात्मक है। प्रकृति सुषमा का आधार पाकर ये बिम्ब और भी अधिक रागात्मक और संवेदना प्रधान बन गये।

चाक्षुष बिम्ब

इस प्रकार के बिम्बों को वस्तु बिम्ब या दृश्य बिम्ब भी कहा गया है। ये बिम्ब दो प्रकार के होते है -स्थिर और गतिशील। जैसे—

"सुनो मैं अवसर अपने सारे शरीर को
पोर-पोर को अवगुंठन में ढक कर तुम्हारे सामने गयी
मुझे तुम से कितनी लाज आती थी
मैंने अक्सर अपनी हथेलियों में
अपना लाज से आरक्त मुंह छिपा लिया।"

अलंकृत बिम्ब

श्रेष्ठ एवं आकर्षक अलकृत बिम्ब या तो रूपक से या मानवीयकरण के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। कभी-कभी उपमाओं के सहारे भी आकर्षक अलंकृत बिम्ब खड़े कर दिये जाते हैं। यथा—

"मैंने देखा कि अगणित विक्षुब्ध विक्रांत लहरे
फेन का शिरस्त्राण पहने

1- प्रो० सतीशकुमार—नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां, पृ० 30
2- डा० जगदीश गुप्त—नयी कविता : स्वरूप और समस्याएं, पृ० 51
3- डा० कैलाश वाजपेयी—आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ० 51

सिवार का कवच धारण किये
निर्जीव मछलियों के धनुष लिए
युद्ध--मुद्रा में आतुर है।"

मानस बिम्ब

मानस में उठे हुए भावों का बिम्बांकन मानस बिम्बों के अन्तर्गत आता है। राधा के काम भाव की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए कवि ने भाव बिम्ब का प्रयोग किया है। यथा—

"मैंने तुम्हे कसकर जकड़ लिया
और जकड़ती जा रही हूं
और निकट और निकट
कि तुम्हारी सांसे मुझ में प्रविष्ट हो जाय।"

स्पर्श बिम्ब

"कनुप्रिया" की "मंजरी परिणय" और सृष्टि संकल्प" शीर्षक कविताओं में अनेक ऐसे बिम्ब आये हैं जो स्पर्श की तीखी अनुभूति कराते हैं। स्पर्श की मादकता और उसी मे भी क्रमिक रूप से बढते गये आलिंगन के सुखों का बिम्बीकरण "कनुप्रिया" में मिलता है। यथा—

"और लो
वह आधी रात का प्रलय शून्य सन्नाटा
फिर कांपते गुलाबी जिस्मों
गुनगुन स्पर्श
कसती हुई
अस्फुट सीत्कारो
गहरी सौरभ भरी उसांसों।"

कनुप्रिया मे आये बिम्ब राधा की विविध मन: स्थितियो की अद्भुत चित्रावली हैं। उनमें कहीं संवृत्ति है तो कहीं विवृत्ति, कही वे स्थिर हैं तो कहीं वे स्थिर है तो कही गतिशीलता और कहीं-कहीं वे बिम्ब संवेद्यता से युक्त होकर भी चाक्षुप गुण कल्पित हो गये हैं। नये कवियों में भारती जी इस दिशा में इतने आगे हैं कि डा० भारी ने स्पष्ट कहा है—"इनकी रचना की समस्त अभिव्यक्ति बिम्बात्मक एव चित्रात्मक है'"[1]

1- डा० धर्मवीर भारती और कनुप्रिया — डा० कृष्णदेव भारी, पृ० 54

प्रतीक विधान

''प्रतीक'' शब्द की व्युत्पत्ति ''तिन'' धातु में ''प्रति'' उपसर्ग पूर्वक ईकन प्रत्यय लगने से हुई है। ''इस व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के अनुसार जिस वस्तु या साधन के द्वारा बोध या ज्ञान की प्रतीति अथवा विश्वास होता है उसे प्रतीक कहते हैं।''[1] ''सामान्यत. कोशों में प्रतीक शब्द का प्रयोग चिन्ह, प्रतिरूप प्रतिमा, सकेत आदि विभिन्न अर्थों में मिलता है।''[2] प्रतीक की अनेक परिभाषाए' दी गई है। किसी स्तर की समान रूप. वस्तु द्वारा किसी अन्य विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अप्राप्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है।''[3] डा० नागर के शब्दों में---'अनुपस्थित तथ्य. पदार्थ विचार या भावादि का अन्य संवेद्य वस्तुओं के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना कि प्रयुक्त अप्रस्तुत भी अपना महत्व टिकाये रखें, प्रतीक कहलाता है।''[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है ---''प्रतीक का आधार सादृश्य या साधर्म्य नही बल्कि भावना जाग्रत करने की निहित शक्ति है।''[5] डा॰ आशा गुप्ता ने भी इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है --''जिन शब्दों में भावोद्बोधन की तनिक भी क्षमता होती है वे भाषा की अलकार योजना में प्रतीक का काम देते हैं।''[6]

नई कविता में प्रतीकों का प्रयोग नवीनता के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। द्वितीय विश्व युद्ध के परिवेश में छायावादी काव्य की अतिशय सूक्ष्मता सामाजिक असपृक्तता, वायवीय कल्पना प्रवणता, स्वप्नमयी रहस्यमयता से ऊब कर ''तार सप्तक'' के कवियों ने सामाजिक-संपृक्तता, बौद्धि-

---

1- ''प्रतीयते प्रत्येति वा इति इ अलीकादयश्चेयति ''ईकन प्रत्येयन साधु'' हलायुध कोश

2- (क) हिन्दी शब्द सागर (भाग 3), पृ० 2208
   (ख) हिन्दी विश्व कोष (भाग 4), पृ० 556
   (ग) एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका-XXX VI, पृ० 284

3- हिन्दी साहित्य कोश-सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 471

4- डा० श्रीराम नागर : हिन्दी की प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणा स्रोत, पृ० 133

5- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-चिन्तामणि (द्वितीय भाग), पृ० 126

6- डा० आशा गुप्ता-खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना, पृ० 99

कता एवं नव-प्रयोगों का नारा बुलन्द किया। इसके परिणामस्वरूप कविता में जर्जरित, क्षुब्ध, युद्ध ग्रस्त मानव मन को बाह्य से विमुख करके यौन-कुंठाओं तथा काम-प्रतीकों का मनोविश्लेषण प्रचलित हो गया। डा. भारती जी दूसरे कवियों की तरह इस दिशा में पश्चिमी काव्यों के प्रतीवाद से प्रभावित अवश्य हुए हैं लेकिन जीवन से अलगाव, पलायन या वैमुख्य भाव उनके प्रतीकों में दृष्टिगोचर नहीं होता है। कवि का विश्वास जीवन के स्वस्थ एवं सुरुचि-सम्पन्न रूप में अधिक है। इसलिए न उनके प्रतीक यौन-कुंठाओं के बोधक हैं, और न ही बौझिलता के परिणामस्वरूप अस्पष्ट विचारधारा के ज्ञापक हैं। वरन् वे सर्वत्र सहज सांकेतिक, सम्प्रेषणीय और मनस्थिति के व्यंजक हैं।

कनुप्रिया में प्रयुक्त प्रतीक

आम्रमंजरी	सौभाग्य, सुहाग
आम्रमंजरियों से भरी	प्रेमजन्य भावावेश में भीगे क्षणवादी सुख का दर्प
मांग का दर्द	सुहाग की दर्द भरी अभिलाषा
सेतु	राधा (कृष्ण की लीलाभूमि और युद्ध क्षेत्र के मध्य)
अमंगल छाया	पारस्परिक सम्बन्धों की संहारक, युद्ध की छाया
कर्म-स्वधर्म निर्णय दायित्व	गीता का कर्म योग
विक्षुब्ध विक्रांत लहरें	युद्धरत सैनिक
निष्फल सीपियां	युद्ध का समापन
निर्जीव मछलियां	मृत सैनिक या एषणाएं
समुद्र की घायल सांपों-सी लहरें	युद्ध का पुनरागमन
सृजन रागिनी	योगमाया
अशोक वृक्ष	कृष्ण-कनु
आकाश गंगा के किनारों का सूना पन	हृदय का सूनापन
अथाह शून्य के सूर्यों का पंख कटे जुगनुओं की भांति रेंगना	आधुनिक पुरुष का ह्रास

कनुप्रिया	राधा
सूर्य	ज्वलनशीलता
धूम्रपुंज	संशय
छाया	तीसरे व्यक्ति का प्रतीक जो स्त्री-पुरुष के बढ़ाते संबंधों के मध्य अदृश्य रूप में है।
नागवधू की गुंजलक और अन्त पंक्तियां	काम क्रीड़ाजन्य वासना की तीव्रता

वास्तविकता तो यह है कि कवि ने नवीनतम समस्याओं के समाधान पौराणिक सन्दर्भों को प्रस्तुत कर इंगित किये हैं। अतीत को वर्तमान के निकष पर कसकर तत्कालीन मान्यताओं, आस्थाओं एवं जीवन-मूल्यों को नकारा है। भारती की प्रतीक योजना से अवगत होने के लिए 'कनुप्रिया" के कतिपय अंशों को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा।

पौराणिक प्रतीक

भारती जी ने भारतीय परम्परा से जुड़े पौराणिक कथा सन्दर्भों को आधुनिक परिवेश की कसौटी पर कसा है और उसके बाद युग की प्रवृत्ति के अनुरूप ही दिशा बोध प्रदान किया है। यहाँ पौराणिक प्रतीकों का सफल प्रयोग हुआ है। यथा—

> "जिसकी शेषशय्या पर
> तुम्हारे साथ युगयुगों तक क्रीड़ा की है
> आज उस समुद्र को मैंने स्वप्न में देखा कनु।
> लहरों के नीले अवगुण्ठन में
> जहां सिन्दूरी गुलाब जैसा सूरज खिलता था
> वहां सैंकड़ों निष्फल सीपियां छटपटा रही हैं
> और तुम मौन हो।"[1]

पुराणों के अनुसार क्षीरसागर में विष्णु और विष्णु पत्नी शेष नाग की शैय्या पर शयन करते हैं। जहां सर्वत्र शान्ति, सौरभ और सद्भाव का वातावरण बना हुआ है। परन्तु राधा को स्वप्न में सर्वथा विपरीत नजर आता है। उसने देखा कृष्ण युद्ध करवाने वाले हैं। वे कभी मध्यस्थता करवाते हैं और कभी तटस्थ रहते हैं।

1. कनुप्रिया, पृ० 73

काव्यशास्त्रीय प्रतीक

काव्यशास्त्रीय प्रतीकों में लक्षणामूलक, रूपकमूलक, बिम्ब मूलक तथा अन्योक्तिमूलक प्रतीकों की गणना की जाती है। समीक्ष्य कृति में लक्षणा मूलक प्रतीक का उदाहरण द्रष्टव्य है —

पहाड़ों की गहरी दुर्लंघ्य घाटियों में
अज्ञात दिशाओं से उड़कर आने वाले
धूम्र पुंजो को टकराते और
अग्निवर्णी वारकापात से
वज्र की चट्टानों को
घायल फूल की तरह बिखरते देखा है
तो मुझे भय क्यों लगा है
और मैं लौट क्यों आयी हूं मेरे बन्धु
क्या चन्द्रमा मेरे ही माथे का सौभाग्य
बिन्दु नहीं है।"[1]

चन्द्रमा कनुप्रिया के माथे का सौभाग्य बिन्दु है। वह जीवन रस है, शोभाजनक है, संरक्षक है पर फिर भी चन्द्रलोक में धूम्रपुंजों का टकराव "संशयों के घटाटोप' का प्रतीक है। जहा संशय है वहां पारस्परिक ऐक्य वैचारिक साम्य, त्याग, सेवा, विश्वास, समर्पण आदि बातो का फलित होना सर्वथा असम्भव है। यहां संशय के लक्षणामूलक प्रतीक द्वारा दाम्पत्य जीवन का विघटन इंगित किया गया है।

वर्णन कौशल

'कनुप्रिया" एक अनुभूतिपरक किन्तु सुसम्बद्ध काव्य है। "कनुप्रिया' मनोभावों की अभिव्यंजना का काव्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसात्मकता को प्रबन्ध काव्य की अनिवार्यताओं में प्रमुख स्थान दिया है। "कनुप्रिया" मे रसात्मक प्रसग वृत्तो की भरमार है। प्रकृति के रसात्मक वर्णनो के अलावा भावों का मूर्तिकरण, राधा की वेदना, निर्व्याख्या उदासी, विरह विह्वलता, स्मृति-चित्रणों की शृंखलाबद्ध योजना, रति क्रीड़ा और परिवेश का प्रभावी वर्णन आदि "कनुप्रिया" के रसात्मक वर्णनों मे मिलते है। इनमे से कुछ प्रमुख वर्णन इस प्रकार है—

जल क्रीड़ा वर्णन

"यह जो दोपहर के सन्नाटे मे

1- कनुप्रिया पृ० 46-17

यमुना के इस निर्जन घाट पर अपने सारे वस्त्र
किनारे रख
मैं घन्टो जल में निहारती हू ।"[1]

सौन्दर्य वर्णन

"अगर मे उमड़ती हुई मेघ घटायें
मेरी ही वलखाती हुई वे अलकें हैं
जिन्हें तुम प्यार से बिखेर कर
अक्सर मेरे पूर्ण विकसित
चन्दन फूलों को ढक देते हो ।"[2]

प्रकृति वर्णन

"कनुप्रिया" में प्रकृति का वर्णन प्रकृति के माध्यम से नहीं हुआ अपितु प्रकृति राधा की विविध मनः स्थितियों की व्यंजिका है। प्रकृति का साहचर्य पाकर "कनुप्रिया" की राधा विरह-व्यथा को भले ही न पोसती हो किन्तु उसके मानस में हलचल अवश्य उत्पन्न करती है। कवि ने प्रकृति के सुकुमार और उग्र दोनों ही रूप काव्य में अंकित किये हैं। राधा-कृष्ण की प्रणय--लीलाओं का क्षेत्र प्रकृति की उन्मुक्त वनस्थली है। कभी वह यमुना के जल मे रहती है, कभी आम्र वृक्ष की छाया में और कभी अशोक वृक्ष के पत्तो के झुरमुट मे प्रतीक्षा के पल विताती दिखाई गई है। काव्यारम्भ मे ही कहा गया हैं कि—

"ओ पथ के किनारे खड़े
छायादार पावन अशोक वृक्ष
तुम यह क्यों कहते हो कि
तुम मेरे चरणों की प्रतीक्षा में
जन्मो से पुष्पहीन खड़े थे ।"[3]

कनुप्रिया स्वयं प्रकृति-स्वरूपा है। समस्त प्राकृतिक सौन्दर्य उसी का विकसित रूप है। वह प्रकृति से उतना सुसज्जित नही जितनी प्रकृति उससे सज्जित है। उत्तग हिमशिखर राधा के ही गोरे कन्धे हैं, चांदनी

1- कनुप्रिया, पृ० 16
2- वही, पृ० 45
3- कनुप्रिया, पृ० 11

में हिलोरे लेता महासागर उसी के शरीर का उतार-चढ़ाव है, उमड़ती घटायें उसी की बलखाती अलकें है, आकाश गंगा उसके केश-विन्यास की शोभा है। वास्तव में देखा जाय तो कनुप्रिया प्रकृति की आकर्षक चित्रशाला है। कनुप्रिया मे जड़ और चेतन दोनों रूपों का वर्णन प्राप्य है।

चरवाहो प्रकृति

"कनुप्रिया" में कहीं-कहीं चरवाही प्रकृति का भी सुन्दर वर्णन हुआ है। सन्ध्या काल में राधा के सकेत स्थल पर न पहुँचने के कारण गायें किस प्रकार बेबसी का अनुभव करती हुई नन्द गाँव की पगडंडी पर मुड़ जाती है, इसका आकर्षक वर्णन कवि ने किया है—

"गाये कुछ क्षण तुम्हें अपनी भोली आँखों से
मुह उठाये देखती रहीं और फिर
धीरे-धीरे नन्द गांव की पगडंडी पर
बिना तुम्हारे अपने आप मुड़ गयीं—
मैं नहीं आयी।"[1]

कोमल स्वरूपा प्रकृति

"कनुप्रिया" का भाव जगत् सुकुमार और कोमल है। इसमें प्रकृति की मधुर और नवोदित छवियों का हृदय मोहक स्वरूप साकार हुआ है। प्रकृति सौन्दर्य मनोभावों के अनुकूल तो है ही साथ में कोमल और मधुर भी है। यथा—

"उस दिन तुम बौर लदे ग्राम की
झुकी डालियो से टिके कितनी देर मुझे बन्शी से टेरते रहे
ढलते सूरज की उदास कांपती किरणें
तुम्हारे माथे के मोर पखो
से बेबस विदा मागने लगी
मैं नहीं आयी।"[2]

वस्तुतः सम्पूर्ण प्रकृति मे कृष्ण की इच्छा का प्रसार है। इस प्रकार वर्णन अत्यधिक कोमलता लिए हुए हैं।

1- वही, पृ० 22
2- कनुप्रिया, पृ० 22

परुष प्रकृति

"कनुप्रिया" की कोमल प्रकृति सचिक्कण और मादक सौन्दर्य से पूर्ण है तो उसकी परुष प्रकृति में भी एक अनिवार्य आकर्षण मिलता है। कोमल रूप यदि मन को बान्धता है तो परुष रूप मस्तिष्क की शिराओं को झनझनाता हुआ नवीन प्रेरणाओं से स्फूर्त करता है—

> "अक्सर जब तुमने
> दावाग्नि में, सुलगती डालियों
> टूटते वृक्षों, हहराती हुई लपटों और
> घुटते हुए धुएं के बीच।"[1]

सौन्दर्य वर्णन

"कनुप्रिया" में प्रतिपादित प्रेम का प्रथम आयाम रूप-सौन्दर्य वर्णन उद्घाटित हुआ है। प्रेम के लिए सौन्दर्य आवश्यक है। जहां सौन्दर्य है वहीं आकर्षण है और जहां आकर्षण वहां प्रेम की उत्पत्ति होती है। *सौन्दर्य आकर्षक और आक्रामक होता है और जहां आक्रामकता है वही प्रेम* का अध्याय खुलता है। "कनुप्रिया" मे रूप सौन्दर्य का प्रसार अधिक है। इस काव्य की यह विशेषता है कि कृष्ण-राधा के सौन्दर्य का हूबहू नख-शिख वर्णन नहीं है किन्तु फिर भी कुछ पक्तियां है जहां सौन्दर्य का यह पक्ष स्पष्टतः अभिव्यंजित हुआ है। राधा नव यौवना है। वह चिर यौवना है अशोक वृक्ष उसके जावक-रचित चरणों के स्पर्श से खिलता है। राधा का शरीर वेतसलता की तरह कोमल हैं। उसकी देह चम्पकवर्णी है। उसकी मांग क्वांरी, उजली और पवित्र है। पतले मृणालसी गोरी अनावृत्त बाहे हैं। राधा का यही सौन्दर्य उसके प्रकृति रूपा व्यक्तित्व को भी संकेतित करता है। इसी कारण निखिल सृष्टि उसी का लीला तन है। कवि के शब्दों मे—

> "मगर ये उतुग हिमशिखर
> मेरे ही—रूपहली ढलान वाले
> गोरे कन्धे हैं—जिन पर तुम्हारा
> गगन सा चौड़ा और सांवला और
> तेजस्वी माया टिकता है।"[2]

स्पष्ट है कि राधा का सौन्दर्य सूक्ष्म-सवेदना के साथ-साथ प्राकृ-

---

1- वही, पृ० 34

2- कनुप्रिया, पृ० 45

तिक उपकरणों से भी सज्जित है, फिर यदि कृष्ण की आसक्ति राधा के प्रति और राधा की कृष्ण के श्यामल नील जलज तन की ओर है, तो प्रेम का प्रादुर्भाव क्यों न होगा ? सौन्दर्य की यह प्रभावी सूक्ष्मता आकर्षण को जन्म देती है। कृष्ण राधा के सम्पूर्ण के लोभी बन जाते हैं और राधा कृष्ण के प्रति क्रमशः समर्पित होती चली जाती है।

युद्ध का सांकेतिक वर्णन

हमारे युग का सबसे बड़ा और अहम् प्रश्न युद्ध का है। युद्ध ने व्यक्ति के सामने मृत्यु और सत्रास की स्थितियों को ला खड़ा किया है। हिन्दी के अनेक रचनाकारो ने युद्ध की समस्या पर लिखा है। दिनकर प्रणीत "कुरुक्षेत्र' प्रबन्ध काव्य में इसी समस्या को उठाया गया है। वस्तुतः महाभारत की कथा से सन्दर्भित काव्यों में यह समस्या अनिवार्यतः उभरी है। डा० देवीप्रसाद गुप्त के शब्दों में—"कुरुक्षेत्र" की रचना द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठ भूमि पर हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध में जन-धन का भयंकर विनाश महाभारत युद्ध की विभीषिका की अनुभूति पाठक को सहज ही करा देता है।"[1] "कनुप्रिया" में भी युद्ध और मानवीय नियति पर विचार किया गया है। राधा ने सहज जीवन जिया है और वह सहज की विश्वासिनी कृष्ण की ओर उन्मुख होकर अपनी सहजता का उत्तर मांग रही है। जिस यमुना में राधा घण्टों निहारा करती थी वही यमुना अब सेना और शस्त्रास्त्रों से लदी हुई नौकाओं से परिपूर्ण है। युद्ध मानव सभ्यता पर छाया हुआ सबसे बड़ा संकट है। युद्ध मानव की स्थिति नहीं हो सकता है। इसी कारण से राधा युद्ध को वितृष्णा की भावना से देखती और कहती है कि—

> "हारी हुई सेनायें, जीती हुई सेनायें
> नभ को कंपाते हुए, युद्ध घोष, क्रन्दन स्वर
> भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई
> अकल्पनीय अमानुषिक घटनायें युद्ध की
> क्या यह सब सार्थक हैं ?"[2]

वास्तव में विचारक की दृष्टि से देखा जाय तो युद्ध की कोई उपलब्धि नहीं है। युद्ध के समय में समस्त मानवीय सभ्यता और उसका इति-

---

1- साहित्य : सिद्धान्त और समालोचना, पृ० 126

2- कनुप्रिया, पृ० 68

ह्रास अपाहिज हो जाता है। "कनुप्रिया" के कृष्ण पहले तो इतिहास का निर्माण युद्ध के सहारे करना चाहते हैं किन्तु इतिहास के निष्फल होने पर वे उसे जीर्ण वसन की तरह त्याग देते हैं। 'समुद्र स्वप्न' नामक कविता में कनु थकित तथा क्लान्त होकर दिशाहारा अनुभव करते हैं— और प्रिया के कन्धे का सहारा लेकर बैठ जाते हैं—

"और मैंने देखा कि अन्त में तुम
थक कर
इन सबसे खिन्न, उदासीन, विस्तृत और
कुछ—कुछ आहत
मेरे कन्धों से टिक कर बैठ गये हो।"[1]

इस प्रकार युद्ध वर्णन को भी "कनुप्रिया" में सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन विविध वर्णनों को देखते हुए "कनुप्रिया" को वर्णन कौशल की दृष्टि से भी एक सफल प्रबंध काव्य कृति कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि "कनुप्रिया" शैल्पिक प्रतिमानों की दृष्टि से भी एक पूर्णत: सफल प्रबन्ध काव्य संरचना है। भाषात्मक सरचना, शैली विधान, अलंकृति, उपमान—विधान, अप्रस्तुत योजना, बिम्ब सृष्टि, प्रतीकात्मक विनियोजन, वर्णन कौशल, सौन्दर्य विधान आदि काव्य रूप विधायक सभी काव्य शास्त्रीय तत्वों का समयोजन नितान्त मौलिक और नवलेखन की प्रवृतियों के सर्वथा अनुरूप है। "कनुप्रिया" की शिल्प प्रविधि में एक ऐसी ताजगी है जो इस कृति के पाठक को आद्यान्त अभिभूत किये रहती है और वह जितनी बार पढ़ता है उतना ही आह्लादित होता है।

1- कनुप्रिया, पृ० 73

- ६

वैचारिक परिप्रेक्ष्य

"कनुप्रिया" की सृजनात्मक प्रेरणाएं

नयी कविता से पूर्व प्रयोगवादी काव्य संरचना "सप्तकों" के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत हुई है। अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित दूसरे सप्तक मे धर्मवीर भारती का भी नाम है। उनकी रचनाओं की पहले पहचान हमें इसी सप्तक से होती है। भारती जी की काव्य संरचना के वर्ण्य-विषय बहुआयामी हैं। उसका एक आयाम समकालीन मानव जीवन की विभिषिकाओं और प्रश्नाकुल स्थितियों से सम्बन्धित है तो दूसरा आयाम छायावादी परम्पराओं से प्रभावित रोमानी तरलता, प्रणयोन्माद और कल्पना–क्रीड़ा से जुड़ा हुआ है। मूलत भारती जी का कृतित्व रोमानी नजर आता है। वे आधुनिक बोध के कवि हैं किन्तु उनकी आधुनिकता प्रेम सौन्दर्य और ऐसे ही कतिपय वृत्तो और विचारों के निरूपण में प्रगट हुई है। "कनुप्रिया" के माध्यम से भारती ने कतिपय सनातन प्रश्नों की ओर ध्यान दिया है। कवि के शब्दो मे—' ऐसे क्षण होते ही हैं जब लगता है कि इतिहास की दुर्दान्त शक्तियां अपनी निर्मम गति से बढ़ रही है, जिनमे कभी हमें अपने को विवश पाते है, कभी विक्षुब्ध, कभी विद्रोही और प्रति–शोधयुक्त, कभी वल्काएं हाथ में लेकर गतिनायक या व्याख्याकार, तो कभी चुपचाप शाप या सलीब स्वीकार करते हुए आत्म बलिदानी उद्धारक या त्राता ···लेकिन ऐसे भी क्षण होते है जब हमे लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है उसका महत्व नही है। महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है—चरम तन्मयता का क्षण जो एक स्तर पर सारे बाह्य

इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है, जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है इस तरह कि समस्त बाह्य– अतीत, वर्तमान और भविष्य सिमट कर उस क्षण में पुंजीभूत हो गया है, और हम, हम नहीं रहे।"[1]

नयी कविता के अधिकांश रचनाकारों ने प्रारम्भिक रचनाओं के माध्यम से जीवन–व्यापी असंगतियों एवं कुंठाजनित मनः स्थितियों के बिम्ब प्रस्तुत किये। इसी समय डा० धर्मवीर भारती की लेखनी से एक अनुभूत आस्था, जीवन के प्रति भविष्योन्मुखी दृष्टि और प्रेमिल सन्दर्भों की गवाही देने वाली रचनाएं लिखी जा रही थी। "लेकिन वह क्या करें जिसने अपने सहज मन से जीवन जिया है तन्मयता के क्षणों में डूब कर सार्थकता पायी है और जो अब उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित नहीं होता बल्कि आग्रह करता है कि उसी सहज की कसौटी पर समस्त को कसेगा। ऐसा ही आग्रह "कनुप्रिया" का है।"[2] सच तो यह है कि भारती की यथार्थ जीवन दृष्टि से प्रेरित रचनाएं भी रोमानी अनुभूतियों से मुक्त नहीं है। किन्तु इनकी शेषानियत छायावादी रोमान से अलग जीवन की सहज अनिवार्यता के रूप में अभिस्वीकृत है। भारती की शैलीगत मौलिकता, नवीन उद्भावना शक्ति और भाषा के जीवन्त प्रयोग प्रायः उनकी सभी कृतियों में पाठक को आकर्षित करते हैं और उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व पाठक को प्रभावित करता है। समीक्ष्य कृति का काव्य बोध भी उन विकास स्थितियों को उनकी ताजगी में ज्यों का त्यों रखने का प्रयास करता रहा है। लेखक के पिछले दृश्य काव्य मे एक बिन्दु से इस सम्यता पर दृष्टिपात किया जा चुका है—गान्धारी, युयुत्सु और अश्वत्थामा के माध्यम से। कनुप्रिया उनसे सर्वथा पृथक–बिल्कुल दूसरे बिन्दु से चलकर उसी समस्या तक पहुंचती है उसी प्रक्रिया को दूसरे भाव स्तर से देखती है और अपने अनजाने में ही प्रश्नो के ऐसे सन्दर्भ उद्घाटित करती है जो पूरक सिद्ध होते हैं। पर यह सब उसके अनजान में होता है क्योंकि उसकी मूल वृत्ति संशय या जिज्ञासा नहीं भावाकुल तन्मयता है। "कनुप्रिया" की सारी प्रतिक्रियाएं उसी तन्मयता की विभिन्न स्थितियां है।"[3] इस काव्य कृति में भारती जी ने राधा–कृष्ण के प्रसंग के सहारे आधुनिकता और रोमा–

1- कनुप्रिया, 'भूमिका से उद्धृत
2- कनुप्रिया–भूमिका से उद्धृत
3- वही

नियत का समन्वित धरा पर व्याख्या प्रदान की, है। प्रणय के विविध आयामों की वैचारिक परिणति के रूप में 'कनुप्रिया" एक विशिष्ट उपलब्धि है। इस काव्य कृति की आत्मा राधा के व्यथा भरे प्रश्नों से गुंजरित है। यथा —

"सुनो कनु सुनो
क्या मैं सिर्फ सेतु थी
तुम्हारे लिए
लीलाभूमि और युद्ध क्षेत्र के
उलध्य अन्तराल में।"[1]

भारती जी मूलतः प्रेम, सौन्दर्य, पीड़ा और शारीरिक आसक्ति के ही कवि है। उनका काव्य संसार छायावादी वैभव और स्वप्निल भावों के मूर्तिकरण का काव्य है। अपने प्रबन्ध काव्यो में कवि बौद्धिक है। आस्थावाद, मानवीय लघुता, सौन्दर्य बोध और मानवतावाद के साथ-साथ जीवन की अनेक असगतियो का चित्रण करने में कवि ने अपनी रचनाधर्मिता के उच्च स्तरों का परिचय दिया है। भारती की रोमानी विचारधारा की कविता में जहां एक ओर वासना का आवेग और उसके औचित्य को प्रमाणित करने वाले भावाकुल तर्क हैं तो दूसरी ओर रागात्मक उदासी के बिम्ब भी बड़े गम्भीर है। स्मरणीय है कि यह उदासी निराशावाद का परिणाम नहीं है। यहां पर भी भावुकता और रोमानियत का ही आग्रह परिलक्षित होता है। भारती के सम्बन्ध में यह उचित ही लिखा गया है कि—"भारती ने सबसे पहले लिखे है— सरलतम भाषा में रंग-बिरगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मांसल गीत, जो न तो मन की प्यास को झुठलायें और न ही उसके प्रति कुंठा प्रगट करे। जो सीधे ढंग से पूरी ताकत से अपनी बात आगे लिखें। आदमी की सरल और सशक्त अनुभूतियो के साथ निडर खेल सकें बोल सकें।"[2] कनुप्रिया की सरचना मे यह रचनादृष्टि सर्वथा अभिव्यजित हुई है। इसी रचनादृष्टि में वैचारिक परिप्रेक्ष्य निर्मित हुआ है। "कनुप्रिया" की वैचारिकता का अनुशीलन हम निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर कर सकते हैं।

युगीन समस्याओं का चित्रण

जब कोई भी रचनाकार रचता है तो उसकी रचना मे युग का

1- कनुप्रिया, पृ० 60

2- दूसरा सप्तक (स० अज्ञेय) वक्तव्य, पृ० 6

चित्रण अनिवार्यत. किसी न किसी रूप में होता है। कवि ने दूसरे विश्व युद्ध की पृष्ठ भूमि पर ही "कनुप्रिया" की रचना की है। द्वितीय महा युद्ध मे भारतीय जनजीवन के सामाजिक ढाचे में जो विघटनकारी परिवर्तन हुए हैं वे अपने आप में युगान्तकारी हलचल समेटे हुए है। युद्ध के बाद समसामयिक परिस्थितियों के साथ--साथ जन साधारण की मनोवृत्तियां भी ह्रासोन्मुखी हो गयी। इस परिवर्तन की प्रतिक्रियाएं दर्शन, धर्म, नीति, कला शासन--व्यवस्था मे ही नहीं अपितु समूची संस्कृति में उजागर हुई है। अणु शक्ति के विध्वसात्मक प्रयोगो की आशका ने इस ध्वस्त मन: स्थिति को और नीचे धकेला जिससे समाज और सस्कृति के तार छिन्न--भिन्न हो गये। इस निष्क्रियता और खीझ की प्रतिक्रिया ने व्यक्ति की रागात्मक प्रवृत्तियो को झकझोर दिया। सामान्य मनुष्य की अपेक्षा सवेदनशील कलाकार की अनुभव प्रक्रिया तीव्रता से घटित होती है। वह संकट को जल्दी समझता और अनुभव कर पाता है। 'वैज्ञानिक युग के इस परिस्थिति द्वन्द्व में सचेतन साहित्यकार, जागरूक कलाकार और अन्तश्चेतना के अनुसन्धाता कवि का कर्त्तव्य शाश्वत जीवन बोध का दिशा--निर्देश कर दिग्भ्रमित मानवता को प्रगति पथ पर गतिमान करना है।"[1] आज के कलाकार के समक्ष इतिहास का सकटापन्न क्षण उपस्थित है। मूल्यों का सघर्ष तो उसे विचलित कर ही रहा है न्याय--अन्याय, पाप--पुण्य, धर्म--अधर्म और दायित्व एवं दायित्वहीनता के प्रश्नो से भी वह घिरा हुआ है। आज का मनुष्य जिस सकट को भोग रहा है वह कवि को तीव्रता से अनुभव हो रहा है। भारती ने भी इसी सकट को अनुभव किया और इतिहास तथा मानव के बीच की खाई को प्रेमिल अनुभूतियों से भरने का सफल प्रयास इस कृति के माध्यम से किया है। "कनुप्रिया" में इसीलिए हमारे युग जीवन से सन्दर्भित प्रश्नों और समस्याओ को बड़े कौशल से रूपायित किया गया है। इस रूपांकन को हम "कनुप्रिया" मे निरूपित समस्याओ के माध्यम से देख सकते हैं।

नारी समस्या

नारी पूरी मानव--सृष्टि की संचालिका है, सामाजिक मूल्यों की संवाहिका है नैतिक आदर्शों की प्रतिपालक है, पुरुष की जीवन सगिनी है

2- डा० देवीप्रसाद गुप्त--स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महा काव्य, पृ० 90

तथा विधाता की चरमोत्कृष्ट कृति है। यह जीवन की सुन्दर मगलमयी वनवेलि है। जीवन के समतल मे अमृत की वर्षा करने और दया, माया, ममता जैसे लोकोत्तर गुणों के पुंजीभूत रूप की जीवन्त प्रतिमा है। हर स्थल पर हर देश, राष्ट्र और समाज में स्वीकृत नारी स्थिति ही सांस्कृतिक स्थिति की ज्ञापक है। आधुनिक समाज में नारी समानता का प्रश्न बड़ी तीव्रता से उठाया गया है और अनेक बार कहा गया है कि उपेक्षिता नारी जागृति को शिखर पर पहुँचाया जाय। भारती ने नारी की स्थिति पर आधुनिक दृष्टि से विचार किया है। मानव जीवन की प्रगति के इतिहास में आज भी नारी अपने पूर्ण समर्पण के पश्चात भी उपेक्षा की दृष्टि से ही देखी जाती है। नारी व्यक्तित्व की सामाजिक स्वीकृति में विस्मयकारी अन्तर्विरोध दृष्टिगत होता है। कहीं उसे उपभोग सामग्री, वासना-तृप्ति का माध्यम एव कामोदीपिका माना है तो कहीं लोकोत्तर गुणों की पुंजीभूत मूर्ति स्वीकारा है।

आधुनिक कविता नारी स्वातंत्र्य की सम्प्रेरिका है। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता, साठोत्तरी कविता विषेध कविता सभी मे सर्वत्र नारी जागरण का स्वर उभरा है। आज की नारी पूर्ववर्ती नारी से सबल एव सक्षम व्यक्तित्व की धारिणी है। वह इन्द्र-लोक की अप्सरा न होकर धरती के मध्य वर्ग की नारी है, वह मात्र पूज्या या आराध्य न होकर संघर्षों मे पिसती, कराहती नारी है। वास्तविकता तो यह है कि आज नारी में विवेक प्रबल है और उसने बौद्धिक जगत में स्वयं को पुरुषो की समता में खड़ा कर लिया है। डा० धर्मवीर भारती का मत है कि बीसवीं शताब्दी के मशीनी युग में निसन्देह प्राचीन मूल्य परिवर्तित हो चुके है। पाश्चात्य सम्पर्क से नारी आज अपने अधिकारों के प्रति पूर्णतः जागरूक है और नवीन सांस्कृतिक जागरण के फलस्वरूप नारी ने विधवा विवाह, विलम्बित विवाह, मुक्त भोग, विवाह युक्त जैसी प्रणालियों को सहर्ष स्वीकारा है किन्तु नारी का भाव जगत यथावत् है। आज भी वह पुरुष की अपेक्षा उदार, त्यागी और सदाशया है। 'कनुप्रिया" मे स्पष्ट किया गया है कि वह क्या करे जिसने अपने सहज मन से जीवन जिया है, तन्मयता के क्षणो में डूबकर सार्थकता पायी है और जो अब उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित नही होता बल्कि आग्रह करता है वह उसी सहज की कसौटी पर समस्त को कसेगा। यथा—

"अब सिर्फ मैं हूं यह तन है

—और संशय है
बुझी हुई राख मे छिपी चिनगारी सा
रीते हुए पात्र की आखिरी बूंद सा
पाकर खो देने की व्यथा गूंज सा।"[1]

अनेक बार नारी स्वय को अरक्षित, निरर्थक, निर्जीव सी अनुभूत करती है। उसे अपनी मान्यताएं, आस्थाएं, धारणाएं मृतक सर्प की कैंचुली के समान खोखली सी जान पड़ती हैं। जिस पुरुष की चन्दन बाहों मे लिपट कर मिलने की दुर्दमनीय चाह उसे अज्ञात भय, अपरिचित संशय, आग्रह भरे जीवन तथा निर्व्याख्या उदासी के क्षणों में भी रही वही पुरुष कालान्तर में उसे पौरूषीय शक्ति से क्षीण लगने लगा। इसी पौरूषहीनता के फलस्वरूप नारी आतंकित होती है। कवि के शब्दों में—

'अक्सर आकाश गंगा के
सुनसान किनारो पर खड़े होकर
जब मैंने अथाह शून्य मे
अनन्त प्रदीप्त सूर्यो को
कोहरे की गुफाओ मे पख टूटे
जुगनुओं की तरह रेंगते देखा है
तो मैं भयभीत होकर
लौट आयी हूँ।"[2]

आज जीवन के हर क्षेत्र में बिखराव है, तारतम्य का अभाव है। पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से आधुनिक नारी की प्रेम–सम्बन्धी मान्यताओं मे अप्रत्यासित परिवर्तन हुआ है। आधुनिक दृष्टि में भोगपूर्ण जीवन न त्याज्य हैं और न अपूत क्योकि वासना सत्य और शिव की साधिका है। यथा—

'सुनो मेरे यार।
प्रगाढ़ केलि क्षणों में अपनी अन्तरंग
सखी को तुमने बाहों में गूंथा
पर उसे इतिहास में गूंथने से हिचक क्यों गये प्रभु।"[3]

1- कनुप्रिया, पृ॰ 59
2- कनुप्रिया, पृ॰ 46
3- वही, पृ॰ 78

युद्ध की समस्या

युद्ध की समस्या कोई आज के कवि की समस्या नहीं है अपितु यह जब से इस भूतल पर मानव ने जन्म लिया है तभी से उसके जीवन से जुड़ी रही है। प्रत्येक युग में कोई न कोई एक ऐतिहासिक युद्ध अवश्य हुआ है। "कनुप्रिया" में युद्ध और मानव नियति पर विचार किया गया है। समीक्ष्य काव्य में सहज जीवन की विश्वासिनी राधा कृष्ण की ओर मुखातिब होकर अपनी सहजता का उत्तर माँग रही है। युद्ध कभी भी मानव की सहज नियति नहीं हो सकता। जिस यमुना मे राधा घण्टों विहार करती थी। वही यमुना अब युद्ध के कारण सेना एवं शस्त्रास्त्रों से लदी नौकाओं से भर गई है। इसी से राधा युद्ध को वितृष्णा की भावना से देखती है। युद्ध मानव सभ्यता पर छाया हुआ सबसे बड़ा भयावह संकट है। इसी संकट की ओर संकेत करती हुई राधा कहती है –

> "हारी हुई सेनायें, जीती हुई सेनायें
> नभ को कंपते हुए युद्धघोष, क्रन्दन स्वर
> भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई
> अकल्पनीय अमानुषिक घटनाए युद्ध की
> क्या यह सब सार्थक हैं ?"[1]

आज जीवन में बिखराव है, तारतम्य का अभाव है, अप्रतिहत भाग दौड़ है और अवांछनीय सन्देह सूचक स्वार्थ लिप्सा है जिस कारण पारस्परिक सम्बन्धों में विकास की अपेक्षा अड़ाव और परिवर्तन उभर आया है। कवि ने इस तथ्य को अपने एक काव्य संग्रह में व्यक्त किया है।"[2]

प्राचीन आदर्श, धारणाएं और मान्यताएं अधुनातन जीवन की समस्याओं के समाधान में अपर्याप्त और हीनतर सिद्ध हो रही हैं। ऐसे वातावरण में इतिहास के क्षण सार्थक हैं या तन्मयता के क्षण, यह संशयात्मक प्रश्न साधारण प्राणी को झकझोर देता है। कवि के शब्दों में—

1- कनुप्रिया पृ० 68

2- "हम सबके-दामन-पर दाग
हम सब की आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों मे टूटी तलवारों की मूठ
–सात गीत वर्ष, पृ० 82

"अर्जुन की तरह कभी
मुझे भी समझा दो
सार्थकता क्या है बन्धु ?
मान लो मेरी तन्मयता के गहरे क्षण
रंगे हुए अर्थहीन आकर्षक शब्द थे
तो सार्थक फिर क्या है कनु !"1

वस्तुत युद्ध कभी भी उपलब्धि नहीं होती है। मानवीय नियति के लिए सबसे भयानक सकट युद्ध का भय है। युद्ध के फलस्वरूप समस्त मानवीय सभ्यता-सस्कृति तथा उसका इतिहास अपाहिज हो जाता है। "कनुप्रिया" के कृष्ण पहले तो इतिहास का श्रीगणेश युद्ध के सहारे करना चाहते हैं किन्तु इतिहास के निष्फल होने पर उसे जीर्ण वसन की तरह त्याग देते हैं। "कनुप्रिया" के "समुद्र स्वप्न" खण्ड में कनु थकित और क्लांत दिशाहारा अनुभव करते हुए अन्ततः प्रिया के कन्धे पर अपना सिर टिका कर बैठ जाते है। इस स्थिति का अकन कवि ने इन शब्दों में किया है—

"और मैंने देखा कि अन्त मे तुम
थक कर
इन सबसे खिन्न, उदासीन, विस्मित और
कुछ-कुछ आहत
मेरे कन्धे से टिक कर बैठ गये हो।"2

अनास्था की प्रवृत्ति

नयी कविता छाया वादी अतिन्द्रिय वायवीयता एवं प्रगतिवादी प्रचारपरक सैद्धान्तिक प्रक्रिया से बिल्कुल भिन्न जीवन के बाह्य एवं आन्तरिक रूपरंग को सस्पर्श करती हुई नव्यतम मानदण्डों की सवाहिका बनकर प्रस्तुत हुई है। कवि भारती ने आधुनिक जीवन मे सम्बन्धों के बिखराव को यथावत् रूपायित किया है और मानव मन को जड़ीभूत करने वाले आशंका और अनास्था जैसे तत्वों को सकेतित किया है। कनु की अवश वेदना का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है कि राधा ने अन्ततः कृष्ण की इस अवशता को पहचाना है और कहा है कि—

"तुम तट पर बाँह उठाकर कुछ कह रहे हो

1. कनुप्रिया, पृ० 69
2. वही, पृ० 73

पर तुम्हारी कोई नही सुनता, कोई नही सुनता।"[1]

इस अनास्था वृत्ति से बचने का उपाय है-समर्पण की पूर्णता। समीक्ष्य काव्य में राधा-कृष्ण को इतिहास निर्माण में अकेला नही छोड़ती है। वह कहती है—

"सुनो मेरे प्यार।
तुम्हें मेरी जरूरत थी न, लो मैं सब छोड़कर आ गयी हूं
ताकि कोई यह न कहे
कि तुम्हारी अन्तरंग केलि सखी
केवल तुम्हारे सांवरे तन के नशीले संगीत की
लय बनकर रह गयी।"[2]

स्पष्ट है कि "कनुप्रिया" में एक ओर विवशता और असहाय भावना को निरूपित किया गया है तो दूसरी ओर नारी के महत्व, गौरव और जागरण को प्रस्तुत किया गया है। निश्चय ही "कनुप्रिया" में युग बोध का गहरा सन्दर्भ है।

भोगवादी मनोवृत्ति

"कनुप्रिया" राग-संवेदनों पर आधारित प्रबन्ध काव्य है। भारती ने इसमें कथा-विस्तार और उसकी स्थूलता पर उतना ध्यान नही दिया जितना कि भावों के अंकन और प्रस्तुतीकरण कर दिया है। "नवयौवना राधा से कृति का श्रीगणेश होता है। वह अनिंद्य सुन्दरी है, प्रकृति स्वरूपा है। उसी के पदाघात से अशोक वृक्ष फूलता है। वह कृष्ण जैसे छलिये और सम्पूर्ण के लोभी के प्रति आसक्ति होती है। यह आसक्त उस समय प्रारम्भ होती है जब राधा यमुना मे जल भरने जाती है।" कृष्ण आम्र वृक्ष की डाली के नीचे खड़े होकर राधा को बन्शी की तान पर स्मरण करते है, किन्तु लज्जा राधा के मार्ग का अवरोध बनती है। वह इसी कारण ठीक समय पर नहीं पहुँच पाती है। कृष्ण मिलने के संकेतक कमल-वेला और अगस्त्य के उजले फूल भेजते हैं किन्तु वह नही आती। बाद में राधा की मन:स्थिति इतनी विचलित हो उठी कि हर हाट-बाजार में "दधि ले-लो" के स्थान पर श्याम ले लो कहकर पुकारती रहती है। फिर उसके सम्बन्धी, सखियां उससे कृष्ण का परिचय पूछते है तो वह चुप रहती है। बाद मे अनेक सम्बन्धों का परिचय दे देती हैं।

1- कनुप्रिया, पृ० 29
2- वही, पृ० 79

राधा-कृष्ण का सम्बन्ध अटूट है यह ब्रह्म और शक्ति का चिरन्तन सम्बन्ध है। उनका प्रेम सृष्टि का उद्भव, स्थिति और लय है। यह सृष्टिक्रम उन दोनों के प्रगाढ़ प्रेम की अनन्तकालिक पुनरावृत्तियाँ मात्र है। राधा कनु की केलि है। उद्दाम आकर्षण के क्षणों में राधा-कृष्ण से मिलती तथा संभोगरत होती है। कृष्ण राधा के साथ उद्दाम-विलास क्रीड़ा करते हैं। तदनन्तर राधा को छोड़कर इतिहास निर्माण के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। राधा सार्थकता के मूल्य की तलाश करती है वह अपनी भावाकुल स्थिति में सहजता को पोषित करती हुई कृष्ण से प्रश्न करती है कि क्या मेरी तन्मयता के क्षण कोरी भावुकता मात्र थे? और क्या यह अमानुषिक युद्ध सार्थक है? राधा विश्वस्त भाव से कहती है कि बिना मेरे इतिहास को असफल होना ही था। अतः राधा कृष्ण की प्रतीक्षा में पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर आकर खड़ी हो जाती है। राधा लीला-संगिनी से सृजन-संगिनी बनती हुई इतिहास संगिनी भी बन जाती है। इस भोगवादी मनोवृत्ति का उदात्त स्वरूप समालोच्य प्रबन्ध काव्य कृति में उभरा है।

अस्तित्व संकट

"कनुप्रिया" में कृष्ण कम और राधा अधिक दिखायी देती है, उसका चरित्र "पूर्वराग" तथा "मंजरी परिणय" खण्डों में अधिक मार्मिकता से व्यक्त हुआ है। 'कनु की प्रिया भाव विह्वला होकर कृष्ण के प्रति आतुर भाव से समर्पण करती है और सम्पूर्ण समर्पण के उपरान्त ही तृप्ति का अनुभव करती है।"[1] वह कृष्ण के व्यक्तित्व में लय हो जाने में ही अपना अस्तित्व समझ बैठी है। कृष्ण उसे अपने शरीर के रोम-रोम में बसे हुए प्रतीत होते हैं।" राधा यह भी अनुभव करती है कि न जाने कृष्ण की प्रतिमा वीणा में छिपे संगीत की भाँति उसके हृदय में कब से छिपी पड़ी थी।"[2] यह डूब जाती है और डूब जाने के अनन्तर उसे अपने रोम-रोम में एक ही छवि का अस्तित्व दिखायी देता है—वह है कृष्ण का।

यौवनारम्भ के समय राधा पूरी तरह कृष्ण पर आसक्त और समर्पित दिखाई देती है। यही आसक्ति उसे यमुना के जल में सारे वस्त्र उतार कर तैरने को बाध्य कर देती है वह घण्टों जल को देखती रहती है

1- नयी कविता : नये परातल, पृ० 196
2- वही, पृ० 197

और अनुभव करती है कि यमुना जल की नीलिमा और सांवली गहराई कृष्ण के व्यक्तित्व की गहराई है जिसने अपने श्यामल और प्रगाढ़ आलिंगन में उसके पोर-पोर को कस रखा है। राधा अपने बारे में सोचती है और पश्चाताप करती है कि मैं उस दिन रास की रात जल्दी ही क्यों लौट आई? कण-कण अपने को तुम्हें देकर रीत क्यों नहीं गयी? कारण तुमने उस रात को जिसे अंशतः आत्मसात् किया उसे सम्पूर्ण बनाकर ही घर वापस भेजा। अब वही सम्पूर्णता मन में बराबर टीसती रहती है। राधा इतिहास को चुनौती देती है कि जब तक मैं अपनी प्रगाढ़ता के क्षणों में अस्थायी विराम चिन्ह हूँ तब तक, समय के अचूक, धनुर्धर तुम अपने शायक उतारे रहो और धनुष बाण को तोड़कर अपने पख समेट कर द्वार पर खड़े होकर चुपचाप प्रतीक्षा करो। इस प्रकार कवि ने अस्तित्व बोध की स्थितियों का भावानुकूल तन्मयता के क्षणो में जीने की स्थितियों से तुलनात्मक सन्दर्भ प्रस्तुत किया है।

प्रेम-तत्व निरूपण

"कनुप्रिया" शृंगार रस प्रधान एक प्रभावशाली गौरवमयी काव्य कृति है। राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम का नवीन सन्दर्भों मे प्रकाशन ही इस कृति काप्र मुख विषय है। भारती ने राधा और कृष्ण के प्रणय-प्रसग को न केवल परम्परा के सूत्रों में खेलने को छोड़ दिया है, अपितु उसमे अनेक नयी स्थितियों को भी परिकल्पित किया है। यहा राधा-कृष्ण का प्रेम लौकिक से अलौकिक और अलौकिक से लौकिक होता रहा है। एक ओर राधा की भावाकुल तन्मयता का उल्लेख है जो कृति में आद्यान्त व्याप्त है तो दूसरी ओर तन्मयता मे वह प्रश्नाकुल भी हो उठती हैं। इसी कारण "कनुप्रिया" में प्रतिपादित प्रेम तत्व से तर्क और तर्क से भाव सहजता में परिणित हो गया है। स्थान-स्थान पर प्रेम की मादकता, रूपासक्ति, समर्पण वृत्ति और समस्त कार्य-कलापो की प्रेम-परक व्याख्या ही "कनुप्रिया" मे विचित्र हुई है। राधा प्रेम योगिनी होकर भी तर्क की प्रतिमा है। उसके हृदय में प्रेम का रस पूरी तरह से भरा हुआ है। उसकी मादकता इतनी सघन है कि कृष्ण का इतिहास निर्माता रूप भी उसी में विलीन हो गया है। डा० रामदरश मिश्र के शब्दों में—"राधा के सारे प्रेम के पीछे तन्मयता, समर्पण और आसक्ति तो है ही, सारे सम्बन्धों का केवल एक ही अर्थ—राधा के गुलाब तन की गहराईयो मे कृष्ण के व्यक्तित्व का विलयन।"[1]

1- हिन्दी कविता : तीन दशक, पृ० 157

"कनुप्रिया" राधा-कृष्ण की सहज प्रेम संवेदना के माध्यम से आधुनिक सम्बन्धों के बिखरावपरक जीवन में जीने का भावात्मक प्रयास है। राधा काव्य में आद्यान्त रोमांचक सहज क्षणों की आराधिका नहीं है क्योंकि उसने तन्मयता के क्षणों में ही सार्थकता संकल्पित की है। जीवन के सुन्दर और अनूठे मुक्त क्षण उसके स्मृति पटल से हटाये नहीं हटते। राधा का यही सहज प्रेम और आन्तरिक तारतम्य प्रस्तुत काव्य-रचना का प्रमुख आयाम बन गया है। राधा चरमसुख के क्षणों में पुनः रीतना चाहती है ताकि जिस्म के बोझ से मुक्त हो सके और स्वयं को आधी रात महकने वाले रजनी गन्धा के पुष्पों की प्रगाढ़ मधुर गन्ध के तुल्य आकारहीन, वर्णहीन और रूपहीन अनुभव करे—

"हां चन्दन
तुम्हारे शिथिल आलिंगन में
मैंने कितनी बार इन सबको रीतता हुआ पाया है
मुझे ऐसा लगता है
जैसे किसी ने सहसा इस जिसम के बोझ से
मुझे मुक्त कर दिया है।
और इस समय मैं शरीर नहीं हूं.......
मैं मात्र एक सुगन्ध हूं
आधी रात महकने वाले रजनी गन्धा के फूलों
की प्रगाढ़ मधुर गन्ध
आकारहीन, वर्णहीन, रूपहीन।"[1]

राधा प्रेम की चरम तन्मयता के क्षणों में अनुभावित रिक्तता अर्थात् मुक्तता की अभिलाषी है। कनुप्रिया का प्रेम विकासोन्मुखी है। प्रेम की सार्थकता के तुल्य वह शब्द की सार्थकता को नहीं स्वीकारती। राधा-कृष्ण की जन्म-जन्मान्तर की सहचरी है जिसे सम्बन्धों की घुमावदार पग-डंडी पर अनगिनत आकस्मिक मोड़ लेने पड़े हैं। इस नये मोड़ पर कृष्ण आतुरतावश अल्पकालीन अवधि में जन्म-जन्मान्तर की समस्त यात्राएं दोहराने को उत्सुक हैं। इस कारण राधा असमंजस में फंस कर प्रश्नों की बौछार से बचने के लिए परिवर्तनशील सम्बन्धों को शब्दों के फूलपाश में जकड़ना चाहती है। वह कृष्ण को सखा, बन्धु, आराध्य शिशु, सहचर मान-

1- कनुप्रिया, पृ० 27

कर तथा स्वयं को सखी, राधिका, बान्धवी वधू, सहचरी, मां आदि नए-नए रूपों में सकल्पित करती है। कनुप्रिया की प्रेम भावना अद्भुत है। कृष्ण लौकिक होकर भी अलौकिता से सम्पन्न हैं, स्थूल होकर भी सूक्ष्म हैं, ऐन्द्रिय होकर भी अतीन्द्रिय है और बन्धनयुक्त होकर भी पूर्ण मुक्त है। कवि ने मांसल या अग-प्रत्यंग सौन्दर्य का अकन न किया हो ऐसी बात नही है।

भोली-भाली सरल हृदया राधा--कृष्ण के संयमित एव मर्यादित प्रेम की भाषा न समझ पाई। समझती भी कैसे ? कृष्ण का प्रेम तो सारे ससार से पृथक पद्धति का अलौकिक प्रेम है। 'आम्र के बौर की तुर्रा मंजरी का मांग में भरना "माथे पर डाल लो, सम्पूर्णत बान्धकर भी मुक्त छोड़ना आदि सांकेतिक रूपों में विशेषत: कृष्ण के प्रेम का अलौकिकत्व द्रष्टव्य है। राधा की उत्तरोत्तर विकास नयी स्थिति का बोध निम्नोद्धृत तालिका में सहज रूप में द्रष्टव्य है।"[1]

कनुप्रिया

भावाकुल तन्मयता

(नारी की उत्तरोत्तर विकासमयी स्थिति)

पूर्व राग

मजीरी
परिणय

इतिहास

समापन

सृष्टि सकल्प

कैशोर्य सुलभ

आत्म समर्पित

सृजन सगिनी विप्रलब्धा

स्मृतिजन्य

मुग्धा

प्रिय पथ विहारिणी

समसुख-दुख भागी

1- डा॰ धर्मवीर भारती कनुप्रिया और अन्य कृतियां, पृ॰ 53

इस प्रकार समूची काव्य कृति में नारीत्व विकासमयी स्थितियों का सांकेतिक निरूपण है जिसका मूल बिन्दु प्रेम है। इस भावाकुल तन्मयी प्रेमी की पराकाष्ठा वहां द्रष्टव्य हैं जहां राधा पुरुष द्वारा उपेक्षित तथा परित्यक्त होकर भी तद्विषयक चिन्ताओं में आकुल रहती हुई नैराश्य एवं मानसिक शैथिल्य के क्षणों में सांत्वना देती है। सच तो यह है कि कनुप्रिया राधा-कृष्ण के प्रेम विगलित व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक विकास है। पूर्वराग मंजरी परिणय सृष्टि संकल्प, इतिहास और समापन-काव्य बोध के विविध चरणों के अन्तर्गत राधा की प्रेमाभिव्यक्ति में कहीं भी अस्वाभाविकता, विशृंखलता या व्यक्ति क्रम का आभास नहीं देते वरन् आद्यान्त मनोवैज्ञानिक भाव बोध के साक्ष्य हैं। कनुप्रिया की प्रेम भावना के प्राणवान् होने में समयुगीन मान्यताओं विचारों एवं सैद्धान्तिक दृष्टियों के संस्पर्श का महत्वपूर्ण योगदान है। इस दृष्टि से सर्वोपरि वैचारिक मान्यता पश्चिम के अस्तित्ववादी विचारक सार्त्र है जिसके प्रभाव से प्रेम भावना का नवीनतम सन्दर्भों के अनुसार अंकन हो सका है। "कनुप्रिया" की राधा प्रेम के सहज क्षणों के सम्मुख ऐतिहासिक उपलब्धि तक को नकार जाती है। उसकी धारणा सर्वथा तर्कानुमोदित प्रतीत होती है—

"और तुम्हारे जादू भरे होठों से
रजनीगन्धा के फूलों की तरह टप्-टप् शब्द झर रहे हैं—
एक के बाद एक-एक के बाद...—
कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व——

मेरे तक आते-आते सब बदल गये हैं
मुझे सुन पड़ता है केवल
राधन्-राधन्-राधन् ।"[1]

प्रेम की वासनात्मक परिणति

"कनुप्रिया" में प्रतिपादित प्रेम का प्रथम आयाम रूप-सौन्दर्य के वर्णन में परिलक्षित होता है। कनुप्रिया में रूप-सौन्दर्य का प्रसार है। यद्यपि इस काव्य मे राधा-कृष्ण के सौन्दर्य का हू-बहू नख-शिख वर्णन नही है किन्तु फिर भी ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जहां सौन्दर्य का यह पक्ष अभिव्यक्त हुआ है। राधा चिरयौवना है। अशोक वृक्ष उसके जावक-रचित चरणों के स्पर्श से प्रस्फुटित है। राधा की देह यष्टि वेतसलता की तरह कोमल हैं, उसकी देह चम्पकवर्णी है। उसकी मांग क्वांरी उजली और पवित्र है। रूप का यह वासनात्मक अकन स्थूल भी और सूक्ष्म भी है। सौन्दर्य की यह प्रभावी सूक्ष्मता वासना के आकर्षण को जन्म देती है। कृष्ण राधा के सम्पूर्णता के लोभी बन जाते हैं और राधा कृष्ण के प्रति क्रमशः समर्पित होती चली जाती है। कभी राधा कृष्ण के आमन्त्रण पर मुग्धा की भांति खड़ी ही रह जाती है तो कभी दौड़ी चली जाती है कभी तो वद रास मे सम्मिलित होकर पूर्णतः समर्पित होना चाहती है। कृष्ण उसे अंशतः ही स्वीकार करते हैं। यह वह स्थिति है जो राधा के मन मे पश्चाताप बनकर बैठ जाती है। वह प्रणय विभोर होकर पश्चाताप की वेदना व्यक्त करती हुई कहती है—

"मैं उस रास रात तुम्हारे पास से लौट क्यों आई ?
जो चरण तुम्हारे वेणु वादन की लय पर
तुम्हारे नील जलज तन की परिक्रमा देकर नाचते रहे
वे फिर घर की ओर उठ कैसे पाये।"[2]

"कनुप्रिया" मे चित्रित प्रेम भावनामय, आवेगमय, किशोर भावों का वहनकर्त्ता और शरीर से शरीर का मिलन तो चित्रित करता ही है, लज्जा, मुग्धता और समर्पण वृत्तियों को भी स्पष्ट करता चलता है। राधा का प्रेम एक लज्जालु नारी का मुग्धाभावयुक्त प्रेम है।

प्रेम का सृजनात्मक स्वरूप

भारती ने अपने एक अन्य काव्य संकलन "ठण्डा लोहा" की

1- कनुप्रिया, पृ० 71
2- कनुप्रिया, पृ० 17

कविताओं में भी तन के रिश्ते को मन के रिश्ते से जोड़कर प्रेम को उदात्तता प्रदान की है। प्रेम की सार्थकता न केवल मन की यात्रा में सिमटती है, वरन् यह तो शरीर की पगडंडी से होता हुआ उदात्त भूमिका पर पहुँचाता है। "कनुप्रिया" में प्रेम को शरीर से मन और मन से शरीर के सोपानों तक यात्रा करते हुए दर्शाया गया है। कृति के "सृष्टि-संकल्प", "सृजन-संगिनी" तथा "केलिसखी" शीर्षक गीतों में प्रेम का यही स्वरूप उद्घाटित हुआ है। प्रणयजनित सार्थकता एवं मुक्तता पाने की अभिलाषिणी राधा कनु की केलिसखी तथा सृजन-संगिनी बनकर प्रगाढ़ विलास में डूब जाती है। कवि के शब्दों में—

"और लो
वह आधी रात का प्रलय शून्य सन्नाटा
फिर कांपते हुए गुलाबी जिस्मों
गुनगुने स्पर्शों, कसती हुई बाहों
अस्फुट सीत्कारों
गहरी सौरभमयी उसांसों
और अन्त में एक सार्थक शिथिल मौन से
आबाद हो जाता है।"[1]

निश्चय ही "केलि-सखी" शीर्षक कविता के अन्तर्गत प्रगाढ़ विलासोत्सुक राधा के अध खुले होंठ कांपने लगते हैं, गला सूखने लगता है और उसकी पलकें आधी बन्द और आधी खुली रह जाती है। परिणाम यह होता है कि वह कृष्ण के बाहुपाश में जकड़ती जाती है—

'मैंने तुम्हें कसकर जकड़ लिया है
और जकड़ती जा रही हूं
और निकट और निकट
कि तुम्हारी सांसे मुझ में प्रविष्ट हो जाये।"[2]

"कनुप्रिया" में प्रेम की तन्मयकारी स्थिति है जहां सृष्टि का सारा कार्य-व्यापार उसी के आस-पास घूमता रहता है। तन्मयता और भावाकुल समर्पण की स्थिति को ही प्रेम का सर्वस्व मानने वाली राधा को सर्वत्र कृष्ण की ही प्रतीति सिद्ध होती है। कृष्ण द्वारा आम्रमंजरी को पूर-पूर

1- कनुप्रिया, पृ० 43
2- वही, पृ० 51

कर पगडंडी पर बिखेरने वाली क्रिया भी राधा की प्रेमिल तन्मयता के कारण अपने मनोनुकूल अर्थ ग्रहण की प्रेरणा देती है। यह वह स्थिति है जो प्रेमियों को एक ही भूमिका पर ले आई है और वह भूमिका है—तन्मयता की।

"कनुप्रिया" में चित्रित प्रेम तन्मयता की उस स्थिति तक पहुंच गया है जहां राधा "दही ले लो", "श्याम ले लो" कहती हुई अपना उपहास कराती फिरती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि निखिल सृष्टि में प्रेम का रंग भरने को आकुल है और उसी का परिणाम यह निश्छल भोलापन है। राधा प्रेम की साकार प्रतिमा है। काव्य में वह कनु की मुंह लगी, जिद्दी, नादान और बावरी मित्र बन गई है। उसे इस नादानी और बावलेपन में आनन्द आता है। यह बावलापन ही उसके प्रणय भाव को निश्छलता से भर देता है। वह कहती है —"कभी हंसकर तुम जो प्यार से अपनी बाहों में कसकर मुझे बेसुध कर देते हो उस सुख को मैं छोड़ूं क्यों। करूंगी। बार-बार नादानी करूंगी।"

काम भावना का स्वरूप

काव्य में काम भावना का स्वरूप छायावाद के प्रमुख कवियों की धारणाओं के अनुरूप है। "महा कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने कामेच्छा को प्रेमेच्छा में परिवर्तित रूप मनुजोचित घोषित किया है क्योंकि क्षुधा, तृष्णा के समान युग्मेच्छा भी प्रकृति प्रवर्तित है।"[1] कविवर जयशंकरप्रसाद ने "कामायनी" महाकाव्य मे काम मंगल से मंडित श्रेय "कहकर कामजन्य प्रेम को जगतनियन्ता माना है।"[2] प्रसाद जी ने आंसू में कहा कि— "जगती के समस्त कालुष्य को पुण्य में परिवर्तित कर देने की सामर्थ्य इस स्वाभाविक क्रिया व्यापार में ही समाहित है।"[3] स्पष्ट कि छायावादी कवियों ने काम भावना को व्यापक सचेतन स्तर पर रूपायित किया है। इसी चिन्तन अनुक्रम में काम को जीवन का अनिवार्य अंग परिकल्पित करने के कारण भारती में ऐन्द्रियता, मांसलता और ऐहिकता उभर आई है। "कनुप्रिया" के अधोलिखित उदाहरण में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है—

"और यह मेरा कसाव निर्मम है"

1- युगवाणी—नारी, पृ० 65

2- कामायनी, पृ० 63

3- आंसू, पृ० 74

और मन्था, और उन्माद भरा, और मेरी बाहें
नागवधू की गुंजलक की भांति
कसती जा रही हैं
और तुम्हारे कन्धों पर बाहों पर होठों पर
नागवधू की शुभ्र दन्त पंक्तियों के नीले-नीले चिन्ह उभर आये
हैं।"[1]

"कनुप्रिया" काम भावना का स्वरूप प्रेम भावना के अन्तर्गत ही विकसित हुआ है। प्रेम के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का समीक्ष्य काव्य में निरूपण हुआ है।

प्रेम का संयोग-वियोग पक्ष

प्रेम के दोनों पक्षों का चित्रण समीक्ष्य कृति में किया गया है। संयोग पक्ष में अनुरक्तता, स्वच्छन्दता, कैशोर्य सुलभ, रूपासक्ति, रोमांस, मुग्धता, केलिक्रीड़ा एवं तन्मयता का जितना सान्द्र एवं प्रगाढ़ चित्रण है, वियोग-पक्ष उतना ही मर्मान्तक और करुण है। "कनुप्रिया" के संयोग-शृंगार में जलकेलि, अनुलेपन, चित्रांकन, वीणावादन, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, रात्रि प्रभात आदि विविध, प्रकृति दृश्यों का उद्दीपन-रूप में नवीन ढंग से निरूपण हुआ है। "कनुप्रिया" की प्रेम भावना में समसामयिक जीवन की घुटन, निराशा, असुरक्षा और विरूपता की भी प्रतिच्छाया है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि भारती जैसा सशक्त और सक्षम कवि इर्द-गिर्द के परिवेश से कैसे असम्पृक्त रह जाता ? "कनुप्रिया" में सांकेतिक प्रेम शरीरी है किन्तु उसकी एक भूमिका सूक्ष्म चेतना स्तरों से भी जुड़ी है। यह प्रेमजनित सूक्ष्मता राधा और कनु की विचित्र प्रेम भंगिमाओं में विकसित हुई है। कनु ने प्रिया को सम्पूर्णतः पाकर भी पूर्ण रूप से असम्पृक्त छोड़ दिया। वह कहती भी है कि यह सारे संसार से अलग पद्धति का जो तुम्हारा प्यार है न, इसकी भाषा समझ पाना क्या इतना सरल है ? समर्पण का एक अर्थ यदि बन्धन की पूर्ण स्वीकृति है तो आधुनिक सन्दर्भों में व्यक्ति बन्धन से मुक्ति की कामना भी करता है। इसीलिये उन्मुक्तता व्यक्ति की निजता को स्पष्टतः रेखांकित कर सकती है।

कवि ने राधा को रास के प्रसंग से पूर्णतः अलग और असम्पृक्त [illegible] मुक्त रहने की बात कहकर प्रेम की सूक्ष्मता ही व्यक्त [illegible]

1- कनुप्रिया, पृ० 51

कवि आधुनिक बोध से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। राधा इसी भूमिका पर आकर कहती है कि—

> "तुम्हारा अजीब सा प्यार है
> जो सम्पूर्णतः बान्ध कर भी
> सम्पूर्णतः मुक्त छोड़ देता है।"[1]

"कनुप्रिया" में प्रेम के दो स्वरूप स्पष्ट रूप से लक्षित है। पहला नारी की उत्तरोत्तर विकासमयी यात्रा का है और दूसरा पुरुष द्वारा सम्पूर्ण प्राप्त करने की भावना से सम्बन्धित है। इन दोनों प्रकार के प्रेम का मुख्य केन्द्र राधा है। "पूर्वराग" में प्रेम की प्रतिमा राधा--कृष्ण की स्मृतियो के साथ प्रेम को व्यक्त करती है। "मजरी--परिणय" मे उसका प्रेम मुग्धा का है और सृष्टि संकल्प में यही प्रेम मांसलता से युक्त होकर वियोग का ताप सहता है। कनुप्रिया के संयोग चित्र वियोग जन्य प्रतिक्रिया की ही उपज हैं, जिनमें सर्वत्र सर्जक की गहन अनुभूति, तीव्र कल्पना, भावमयी स्वप्नशीलता और अप्रतिहत तन्मयता दिखायी देती है। भारती का मन्तव्य राधा—कृष्ण के विगत मधुर सम्बन्धों को निरावृत करना है। इसलिए उनकी कामगत कुण्ठा, दमित, वासना और प्रच्छन्न आवेग आदि प्रवृत्तियों, प्रणय प्रसंगों से स्पष्ट प्रतिध्वनित हुई है। "भारती ने मांसल प्रेम को अलौकिक आधार दिया है—सृष्टि का निर्माता बताया है किन्तु इसका वर्णन देह--धर्म की ही स्वीकृति अधिक प्रतीत होती है। यही भाव भारती की "कनुप्रिया" के प्रेम में भी अनुस्यूत है।"[2]

वियोग पक्ष

विरह प्रेम की अमूल्य निधि है। जिसने मधुर मिलन की स्मृति का अनुभव नही किया है वह सचमुच प्रेम के आनन्द से वंचित है। वियोग में मात्र याद रह जाती है और वासना का पूर्णतया लोप हो जाना है। वियोगाग्नि मे तप कर वासना का कलुष धुल जाता है और हृदय को शान्ति मिलती है। 'कनुप्रिया" की मूल सवेदना प्रेम है किन्तु इस सवेदना को उसकी गहराईयों में उभरते हुए भी कवि मूल्यों से उसे असपृक्त नहीं कर सकता। कृष्ण का युद्ध सत्य है या राधा के साथ उनका तन्मयता में बीता क्षण। शायद प्रेम के क्षण ही सत्य है—क्योंकि वे क्रियाहीन मन की संक-

---

1- कनुप्रिया, पृ• 32

2- नयी कविता में मूल्य बोध—शशि सहगल, पृ० 84

रूपात्मक अनुभूति है और युद्ध द्विधा की उपज, अनजिए सत्य का आभास।"[1]
"कनुप्रिया" का वियोग पक्ष परम्परागत वैचारिक सरणियों को स्वीकार नहीं करता बल्कि जीवन के नव्यतम मानदण्डों का सवाहक है। वह भोली-भाली परन्तु विवेकशीला है, भावाकुल होकर भी एक जीवन पद्धति की समर्थक है, जो आत्म समर्पित होकर भी अस्तित्ववादी दर्शन की अनुकर्त्री है। कनु राधा को छोड़कर इतिहास निर्माण के लिए चले जाते हैं। फलतः राधा के प्रेमिल संसार में वियोग का ताप उत्पन्न होता है। राधा तन्मयता और समर्पण वेदना में डूब जाती है। अभी तक प्रेम के जिस जादू से राधा का यौवन ऊष्मावलित था, वही अब बुझी हुई राख, टूटे हुए राग, डूबते चांद और रीते पात्र की आखिरी बूंद की तरह हो जाती है।

कृष्ण महाभारत का युद्ध सचालन करने चले गये हैं और राधा अकेली रह गयी-निपट अकेली। वह कृष्ण को विस्मृत न कर पायी। अब भी उसका आम्र की डाली के नीचे सूनी मांग आना, शिथिल चरण असमर्पिता लौट जाना पूर्ववर्ती प्रेम का निर्वाह ही तो है। उसे कृष्ण का सांवरा लहराता जिस्म, किंचित् मुड़ी शख ग्रीवा चन्दन बाहें, अधखुली दृष्टि धीरे-धीरे प्रस्फुटित जादू भरे होठ पूर्ण रूपेण स्मरण है। जिन अलकों से उसने समय की गति को बाधा था उन्हीं काले--नागपाशों से दिन-प्रतिदिन-क्षण--प्रतिक्षण बार-बार डसी हुई लीलाभूमि और युद्ध क्षेत्र के अलध्य अन्तराल में एक सेतुमात्र रह गई। 'कृष्ण के साहचर्य मे जादू सा, सूरज सा लगने वाला देह जूड़े से गिरे म्लान बेले सा, बीते हुए उत्सव और उठे हुए मेले-सा दुगना सुनसान लगने लगा। राधा जीवन मे सहज क्षणों के अस्तित्व के अतिरिक्त समस्त को नकार जाती है इससे बढ़कर जीवन-पराजय और क्या होगी ?"[2] वस्तुतः यह वह स्थिति है जो प्रेम को पूर्णता एव परिपक्वता प्रदान करती है। प्रेम की पुष्टि के लिए वेदना आवश्यक है। इस वेदनामयी स्थिति में प्रेम का परिष्कार होता है, विवेक जाग्रत होता है और रसमय करने वाला प्रेम वैचारिक परिणति पा जाता है।

राधा के प्रेम में तल्लीनता एव गाम्भीर्य दोनों का समावेश है। वह मध्ययुगीन कृष्ण मार्गी कवियों की राधा के समान भोली-भाली होते हुए भी तर्कशीला है। विविध भावभूमियों को लांघकर उसका प्रेम औदात्त

1- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ॰ 205
2- नयी कविता : नये कवि, पृ॰ 66

की भूमिका का संस्पर्श करता है। उसे विश्वास है कि वह केवल तन्मयता के क्षणों की सगिनी बनकर नहीं रह गयी बल्कि इतिहास-निर्माण में भी कनु को सहयोग देगी और उसे सूनेपन से बचायेगी। राधा और कनु का सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का अटूट सम्बन्ध है इसलिए सीमाओं में, बन्धनों में, परम्पराओं में बधकर या निर्जीव होकर मात्र केलिसगिनो बने रहना राधा को स्वीकार्य नही है। "कनुप्रिया" में प्रतिपादित प्रेम आद्यांत सहज है। उसमें रूपासक्ति है। आकर्षण है, तन्मयता है, भोलापन है और प्रगाढ़ समर्पण है। यह प्रेम देह-धर्म को स्वीकार करता हुआ, रीझ, खीझ, अकुलाहट, लज्जा, अवहित्था उत्साह और हर्ष आदि मनोभावों से युक्त है। यही प्रेम अन्ततः उदात्त और वैचारिक परिणति पा जाता है। इस समीक्ष्य काव्य में प्रेम विविध मनोभूमियों से होता हुआ सार्थकता के बिन्दु पर पहुँच जाता है।

दार्शनिक अनुचिन्तन का स्वरूप

दर्शन की दृष्टि से आधुनिक कवियों को अद्वैतवादी, विशिष्टा द्वैतवादी द्वैताद्वैत, आदि साम्प्रदायिक दायरे में निबद्ध कर पाना कठिन है। भारती जी ने कनुप्रिया के आग्रह स्वरूप समस्त को क्षण की कसौटी पर कसना चाहा है परन्तु उनकी धारणा की यात्रा गडमड्ड रही है। कनुप्रिया मे कृष्ण के ब्रह्म स्वरूप पर राधा की अस्तित्ववादी धारणा को विजयी तो घोषित किया हैं परन्तु यह सब औपचारिक निर्वाह सा लगता है। "कनुप्रिया" के काव्य दर्शन में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनो ही वैचारिक सरणियाँ दिखायी देती हैं।

ब्रह्म-परिकल्पना

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म एक पूर्ण सत्य है। ब्रह्म की सिद्धि के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नही, क्योंकि वह स्वयं-सिद्ध एव प्रकाशमय है। चैतन्य को ही आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। "समस्त अज्ञानो से *अविच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है।*"[1] *"प्रिय-प्रवास"* के रचयिता हरिऔध जी भी भारतीय दर्शन की अद्वैतवादी परम्परा से प्रभावित थे। उन्होंने ब्रह्म को अत्यन्त व्यापक रूप मे विवेचित किया है। उन्होने एक स्थल पर लिखा है कि—"ईश्वर एक देशीय नही है, वह सर्वव्यापक और अपरिछिन्न हैं, इसकी सत्ता सर्वत्र वर्तमान है, प्राणी मात्र मे उसका विकास है—सर्व

1- डा० उमेश मिश्र—भारतीय दर्शन, पृ० 359

सर्व्विद ब्रह्म नेह नास्ति किंचन।[1] सम्पूर्ण, संसार के इन्द्रिजन्य कार्य ब्रह्म द्वारा ही परिचालित होते हैं। तारागण, सूर्य, अग्नि, विद्युत, नाना रत्नों और विविध मणियों में उसी ब्रह्म की विभा प्रकाशमान है। पृथ्वी, पवन, जल, आकाश, पादपों और खगों मे उसी ब्रह्म की प्रभुता व्याप्त है।"[2] वेद, उपनिषद और अन्य भारतीय दर्शन ग्रन्थो में जाग्रत चेतना द्वारा अनुभावित परम सत्ता को ही "ब्रह्म" संकल्पित किया गया है। वैष्णव धर्म ग्रन्थों मे कृष्ण को ब्रह्म माना गया है। पुराण ग्रन्थों में कृष्ण को देवाधिदेव लोक-पालक, वासुदेव, परमब्रह्म आदि रूपो में प्रतिपादित किया गया है।

"कनुप्रिया" में ब्रह्म के सनातन, निर्विकार, निराकार, अखण्ड, शासवत रूप का आरोपण कृष्ण के व्यक्तित्व में किया गया है। इस सम्बन्ध मे डा० विनय का यह मत द्रष्टव्य है कि—'महाभारत का ब्रह्म पौराणिक युग में यात्रा करता हुआ मध्य युगीन दार्शनिकों के हाथों गोपी-जनवल्लभ, राधावल्लभ बना। आधुनिक कवि अपनी वैष्णवी एवं युगीन भावना के अनुसार उसे दो रूपो मे स्वीकार करता है।"[3] कृष्ण के भी दो रूप हैं—प्रथम, ब्रह्मत्व की सकल्पना से सम्बद्ध अलौकिक रूप तथा द्वितीय, महामानवीय रूप। आधुनिक कवियो ने ब्रह्मत्व को महामानव में प्रतिष्ठित तो किया है पर आस्थापरक दृष्टि के कारण महामानवतत्व में पुनः ब्रह्मतत्व को खोजा हैं। "कनुप्रिया' के कनु स्वेच्छाचारी, सम्पूर्ण के लोभी है, बांसुरी के गहरे अलाप से मदोन्मत्त गोपियों के साथ रास रचाने वाले हैं लेकिन फिर भी निर्लिप्त, वीतराग, निश्चल और निर्विकार हैं। यही तो कृष्ण की सर्वातिशयता और अतिक्रमणता है जो सिद्धो और वैष्णवों की मान्यताओं के पारस्परिक सामंजस्य द्वारा उपजी है।

कृष्ण का स्वरूप

"कनुप्रिया" के काव्यनायक श्रीकृष्ण प्रबन्ध काव्य नायक की गरिमा से युक्त हैं। विभिन्न अवतारों में वे सर्वाधिक लोकप्रिय और मान्य हैं। "कनुप्रिया" में ब्रह्म अवतारी कृष्ण के मुख्यतः दो रूप मिलते हैं।

1- महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यो पर प्रभाव, पृ० 227

1- गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश— महाकवि हरिऔध, पृ० 173

2- प्रिय प्रवास—षोडश सर्ग, पृ० 107-110

वैष्णव कृष्ण

कवि ने पूर्वराग, मंजरी--परिणय एवं सृष्टि--सकल्प के प्रकरणों मे कृष्ण को सृष्टि-सर्जक, पालक, सहारक ब्रह्म के रूप में अंकित किया है। कृष्ण के समस्त सृष्टि व्यापार का अर्थ कृष्ण का सकल्प और इच्छा है। सारे सृजन, विनाश, प्रवाह और अविराम जीवन--प्रक्रिया का अर्थ, कृष्ण की इच्छा है, संकल्प है किन्तु कृष्ण की इच्छा शक्ति या संकल्पबद्धता का परम स्वरूप राधा को माना गया है।

महाभारतीय कृष्ण

"इतिहास" चरण के महाभारतीय कृष्ण एक शासक, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार और अन्ततः पराजित पीढ़ी का नेतृत्व करने वाले आधुनिक मनुष्य के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। राधा महाभारतीय कृष्ण के प्रति उदासीन है और भागवत् के कृष्ण को स्वीकारती है। इतिहास-भूमि पर वह मात्र स्मृति बटोरती है, आम की डाल, सूनी माग, शिशुवत् कृष्ण आम्र मंजरी आदि शब्दों के अर्थों के प्रति उसमें संशय उठते हैं। स्थिति के परिवर्तन से अर्थ बदल जाते हैं। डा० रमेश कुन्तल मेघ ने "कनुप्रिया" को सिद्धरति से वैष्णव महाभाव और अस्तित्ववादी क्षण भोग तक की गड्ड-मड्ड मात्र इसी अर्थ मे कहा है।"[1] प्रथम पृष्ठ पर अशोक वृक्ष कृष्ण का प्रतीक है जिसमें परम भोगवादी सिद्धों के महासुख की प्रतिच्छाया है। सिद्धों के लिए रतिसुख महासुख का अंश है। इनका भोग ही योग में परिणत है।

"कनुप्रिया" के कृष्ण के व्यक्तित्व में वैष्णवीय और महाभारतीय कृष्ण के विभिन्न पक्ष अन्तर्निहित हैं जिनका सकल्प विविध पुराणों महाभारत, आगमों, सिद्ध-साहित्य एवं अन्य भक्ति ग्रंथो के आधार पर सर्वातीत, सर्वातिक्रमण शक्ति के रूप में हुआ है, किन्तु विशेषता एक ही है कि समूची कृति में वैष्णवी महाभारतीय कृष्ण को अस्तित्ववादी कसौटी पर कसा है। एक प्रकार से भारती जी ने एक परम्परागत रूप का आधुनिकीकरण कर दिया है। कृष्ण से सम्बन्धित समस्त पुराने शब्दों का अपनी आवश्यकताओं, मूल्यों और इच्छाओं के अनुसार नवीनीकरण किया गया है।

---

1. धर्मवीर भारती—स० लक्ष्मणदत्त गौत्तम, पृ० 198

राधा तत्व माया या शक्ति के रूप में

राधा की माधुरी मूर्ति का अकन हमे भक्त कवि जयदेव के "गीत-गोविन्द" मे मिलता है। जयदेव ने "उद्दाम प्रेम मयी" राधा का चित्रण किया है। उनकी राधा विलासिनी होते हुए भी कृष्ण के प्रेम में अनन्य भाव से उन्मत्त और आसक्त चित्रित की गई है। बगाल के वैष्णव कवि चण्डीदास की पदावली में राधा का विरहिणी के रूप में चित्रण हुआ है। किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि चण्डीदास की राधा में मानस-सौन्दर्य चरम सीमा पर है तो विद्यापति की राधा में शरीर-सौन्दर्य अपनी परिणति पर है। परवर्ती साहित्य मे राधा का चित्रण इनके अनुकरण पर हुआ है।

"कनुप्रिया" की राधा वैष्णव राधा, आधुनिक रोमांटिक राधा और त्रिपुर सुन्दरी राधा है, किंवा इन तीनों में कान्त मैत्री है।"[1] इस काव्य में मूल रेखाए वैष्णव राधा की हैं जो सृष्टि संकल्प मे सृष्टि की सर्जका, पालिका एव सहारिका के रूप में कृष्ण की शक्ति बनकर प्रत्यक्ष हुई हैं। 'तुम मेरे कौन हो" और 'सृजन सगिनी" नामक खण्डों मे राधा का यही रूप उभरा है। कृष्ण ने जो यह सुन्दर प्रकृति जाल फैलाया है—इसका अन्तिम अर्थ है – कृष्ण का संकल्प और इच्छा। सम्पूर्ण सृजन, विनाश प्रवाह और अविराम जीवन-प्रक्रिया का आशय केवल ब्रह्म (कृष्ण) की इच्छा ही तो है और कृष्ण की इच्छा-शक्ति का अर्थ है – राधा। कृष्ण के सम्पूर्ण अस्तित्व का अर्थ मात्र है—उनकी सृष्टि, उनकी सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थ है—मात्र उनकी इच्छा और उनकी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ है—मात्र राधा। "तुम मेरे कौन हो" मे कवि ने राधा-कृष्ण के विविध सम्बन्धों को निरावृत्त कर अन्तत: राधा को कनु की शक्ति के रूप मे ही प्रस्तुत किया है जो निखिल पारावार में व्याप्त हैं और वे ही विराट, सीमाहीन, अदम्य, दुर्दान्त और भोग माया है।

जगत की व्याख्या

शंकराचार्य ने ब्रह्म और जीव की एकता की स्थापना करते हुए जगत को मायामय कहा है। वे 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या" सिद्धान्त के संपोषक थे। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से जगत की सत्ता को वे भी अस्वीकार नहीं कर सके थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि—'शंकर ने जगत्

1- धर्मवीर भारती—सं० लक्ष्मणदत्त गौतम, रमेश कुन्तल मेघ, पृ० 194

की सत्ता को व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मान कर दुःख से बचने के लिए अनेक विधान प्रचलित किये।"[1] हरिऔध ने विश्व को विश्वात्मा का ही रूप माना है। उन्होंने संसार को परिवर्तनशील तो कहा है किन्तु उसके अस्तित्व को स्वीकार नही किया। वास्तव में प्रिय प्रवासकार के जगत विषयक विचारों का सार यह है कि वे ससार को वेदान्तियों की भांति नश्वर, मिथ्या, क्षणभगुर या असत्य नहीं मानते वरन् अच्छे कार्यों द्वारा ससार के जीवन को सुखमय बनाने की बात कहते हैं। "कनुप्रिया" के कवि ने भी "सृष्टि-सकल्प" नामक काव्य खण्ड में सृष्टि, सृजन, विनाश, प्रवाह और अविराम जीवन प्रक्रिया का अर्थ प्रभु-इच्छा या सकल्प माना है।

"कनुप्रिया" की जगत विषयक विचारणा वैष्णव आचार्य रामानुज एवं वल्लभ सम्प्रदायों की अनुवर्तिनी है, क्योंकि इन दोनों सम्प्रदायो में जगत् को पर ब्रह्म का भौतिक स्वरूप संकल्पित किया गया है। प्रलय काल में भी जगत् का नाश नही होता, उसका तिरोभाव होता है। "वह अपने मूल तत्व रूप से ब्रह्ममय हो जाता है। जगत की सृजना, पालन एवं सहार आदि दृष्टियो से सांख्य वेदान्त की धारणाओं में ऐक्य है।"[2] सृष्टि और सृष्टा, जगत् और ईश्वर, प्रकृति और पुरुष अभिन्न है उनमे द्वैत नही है। गीता में ईश्वर को त्रिगुणात्मक सृष्टि का रचयिता होते हुए भी निर्लिप्त, निर्विकार ठहराया है। महाभारत के वन पर्व मे जगदुत्पत्ति क्रम को एक तात्विक ढग से सुलझाया है। "वन पर्व मे बाल मुकन्द जी कहते हैं कि मैं ही समस्त स्थावर प्राणियों और देवता आदि की रचना एव सहार करता हूं।"[3] प्रलयकाल में समस्त प्राणियों को महानिन्द्रा रूप माया से मोहित करके स्थित रखता हूं इस समय ब्रह्मा सोये रहते है। उनसे एकीभूत होकर सृष्टि की रचना करूंगा।"[4] 'कनुप्रिया" के सृष्टि सकल्प काव्य प्रखण्ड में इसी विचारधारा की सपुष्टि मिलती है।

अस्तित्ववादी विचार दर्शन

अस्तित्ववादी दर्शन का प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में चाहे उल्लेख

1- डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय-हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० 116

2- महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यो पर प्रभाव, पृ० 433

3- वही, पृ० 433

4- महाभारत का आधुनिक प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव, पृ० 434

ने हुआ हो किन्तु इस प्रकार की विचारणा यहां प्रचलित अवश्य थी।
अस्तित्ववादी विचारकों में कीलेगार्द, नीत्शे, मार्टिन, ज्यांपाल, सार्त्र,
आल्बेयर कामू आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन चिन्तकों ने आस्था-
परक, सामाजिक यथार्थपरक आदि विभिन्न दृष्टियों से अस्तित्ववाद पर
चिन्तन किया है। "व्यक्ति को स्वतन्त्र सम्बद्धता ही उसे सम्पूर्ण मानवता
से बांधती है। व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का बोध और मानवीय कर्त्तव्य
चेतना अस्तित्व का मूल सार तत्व है।"1 निष्कर्षतः यही कहा जा सकता
है कि मृत्यु के अनिश्चित भय से त्राण पाने के लिए जीवन को एक अर्थ
देना अस्तित्व चिन्तन की उपलब्धि है। अस्तित्ववाद की प्रमुख विशेषता
है मनुष्य को उसके व्यक्तित्व के प्रति सजग करना। व्यक्तिनिष्ठा का
आशय यह है कि मानव निर्णय लेने में स्वतन्त्र होकर भी मानवीय निष्ठा-
चार की अवहेलना करने में असमर्थ है। इनकी नजर में ईश्वर बेकार
तथा महगी उपकल्पना है। कुछ आलोचकों की धारणा है कि अस्तित्ववाद
अराजकतावादी-असामाजिक दर्शन है। वास्तव में यह धारणा एकांगी है
क्योंकि अस्तित्ववाद का अस्तित्व मानव को निराशा के गर्त मे धकेलना
कदापि नहीं है। इस अनीश्वरपरक दर्शन का वास्तविक उद्देश्य इर्द-गिर्द
के परिवेश से जूझकर स्वअस्तित्व की रक्षा का प्रयास है। अस्तित्ववाद न
तो निराशा का दर्शन है और न आत्मघात का। अस्तित्ववाद मूलतः व्य-
क्तिपरक दृष्टिकोण है। घोर व्यक्तिवादिता, व्यक्ति स्वातन्त्र्य, आत्मोन्मु-
खता आदि प्रवृत्तियों ने इस चिन्तन पद्धति को विशेषतः विकसित किया
है। इसी चिन्तन की महत्वपूर्ण उपलब्धि क्षणवाद की मान्यता है जिसे भी
अस्तित्व रक्षण के साथ-साथ 'कनुप्रिया" में स्थान मिला है।

'कनुप्रिया" का क्षणवाद बौद्धों के क्षण से भिन्नता का द्योतक
है। बौद्ध धर्म वाले नश्वरवादी किसी क्षण विशेष को नहीं स्वीकारते
परन्तु भारती के काव्य में प्रत्येक क्षण को भोगने की ललक हुई है और
प्रत्येक क्षण को उपभोग करने का मोह भी बना हुआ है। क्षण का महत्व
मृत्यु की आकस्मिकता पर आधृत है जहां व्यक्ति अपने को समसामयिक
जीवन के प्रति प्रतिक्षण उत्तरदायी मानता है। "कनुप्रिया" के पहले प्रसंग
"पूर्वराग" के पांचों गीतो में क्षण-क्षण की खोज का विस्तार से चित्रण
किया गया है। इन गीतों में राधा की वैयक्तिकता प्रमुख है और आत्मरति
अन्तर्द्वन्द्व सूक्ष्म आत्मानुभूति, निराशा आन्तरिक विश्लेषण आदि बिन्दु

1- अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य, पृ० 31

प्रमुखतः उभरे हैं। राधा एक-एक क्षण से तारतम्य करती है। "कनुप्रिया" में भागवत् और महाभारत दोनों की ही राधा को "सहज" की कसौटी पर कसा गया है। यह कसौटी "अस्तित्व के अर्थ" की बोधक है और इसका बिन्दु है "क्षण"। राधा का सरल हृदय और सहज अनुभव, जटिल बुद्धि और यथार्थ विषमताओं को नहीं झेल पाता। वह काल के खण्डातिखण्ड क्षण को भोगती है जहां क्रम, परिवर्तन, जटिलता, विश्लेषण, व्याख्या निरर्थक है। राधा चरम साक्षात्कार के एक क्षण को समूचे इतिहास से बड़ा तथा सशक्त मानती है, क्षण जीविता का इससे बढ़कर प्रमाण क्या होगा।

मानवतावादी जीवन दर्शन

"कनुप्रिया" की राधा पारम्परिक भूमिका पर प्रतिष्ठित होते हुए भी नवीन सवेदना के अनुरूप ही काव्य में प्रस्तुत हुई है। "कनुप्रिया" प्रबन्ध काव्य की राधा न तो मात्र वेदना की पुतली है, न भगवद् भक्ति में निमग्न राधा है, न केलि विलासिनी मात्र है, वरन् वह तो मर्म और धर्म दोनों को निरूपित करती हुई प्रश्नाकुल, सार्थकता की अभिलाषिणी, व्यक्तित्व के प्रति चेतन, उपेक्षा भाव को न सहने वाली, तर्क शीला, प्रेममयी होकर भी अन्तः प्रज्ञ, सूक्ष्म विश्लेषिका और विवेकशील प्रतिभा से युक्त, आधुनिक सवेदनाओ के घात-प्रतिघातो को सहने वाली सजग प्रेमविह्वला नारी है। "कनुप्रिया" मुख्यत. मूल्यान्वेषण का काव्य हैं। अतः राधा भी यहां सार्थक मूल्यों की तलाश मे रत दिखलायी गई है। उसका व्यक्तित्व मात्र प्रणयाकुल और समर्पित व्यक्तित्व नही है वरन् सतर्क, सजग और मूल्यान्वेषिणी नारी का व्यक्तित्व है। यही काव्य की मानवतावादी रचना-दृष्टि उभरी है। डा० रमेश कुन्तल मेघ ने तो यह भी कहा है कि कनुप्रिया की राधा वैष्णव राधा, आधुनिक रोमांटिक और त्रिपुर सुन्दरी राधा है, किंवा वह इन तीनों की कान्त मैत्री है। इन स्वरूपों को अंकित करने में भारती ने सिद्ध रति से वैष्णव समर्पण भक्ति तथा अस्तित्ववादी क्षणभोग तक का प्रमाण किया गया है।

अनास्था का व्यक्तिकरण पूज्य या श्री पात्र की सामर्थ्य या आदर्शो के प्रति संशयात्मक वृत्ति मे द्रष्टव्य है। राधा का चरित्र एक ओर तो कृष्ण के सिद्धान्तो में अनास्थापूर्ण एवं सशयात्मक वृत्ति का बोधक है तो दूसरी ओर ऐन्द्रिय सुखाकांक्षी लगता है। "समुद्र स्वप्न" प्रकरण में

कृष्ण का युद्ध विरत होना और न्याय-अन्याय का समाधान न कर पाने पर राधा का स्मरण सचमुच सामाजिक आदर्शों के प्रति उसके अनास्थापरक दृष्टिबोध का ज्ञापक है। 'कनुप्रिया' में कवि ने समसामयिक जीवन के विविध आयामों को उभारा है और आयामों के संस्पर्शक नवीव अस्तित्ववादी दर्शन को प्रस्तुत किया है। इस कृति मे पूर्ववर्ती चिन्तन को जिस मानवीय सहजता से नकारा है उसी सूची से उसके मानवीय पक्ष को स्वीकारा भी गया है। कवि ने नये सिरे से मानवीय मूल्यों पर विचार किया है। इस दृष्टि से 'कनुप्रिया' की ये पंक्तियां द्रष्टव्य है—

"कर्म, स्वधर्म, निर्णय दायित्व
मैंने गली-गली सुने हैं ये शब्द
अर्जुन ने इनमे चाहे कुछ भी पाया हो
मैं इन्हें सुनकर कुछ भी नही पाती प्रिय,
सिर्फ़ राह में ठिठककर
तुम्हारे उन अधरों की कल्पना करती हूँ
जिनसे तुमने ये शब्द पहली बार कहे होंगे।"[1]

सम्पूर्ण काव्य में पम्परागत मानवीय मूल्यों को आज के सन्दर्भ में परखा गया है। कवि ने कर्म, स्वधर्म निर्णय, विवेक, मर्यादा, कर्तव्य बोध, युद्ध, अहिंसा आदि असख्य मानवीय मूल्य सन्दर्भों की नयी अर्थवत्ता खोलने का प्रयास इस काव्य में किया है।

सौन्दर्य चेतना

प्रेम का प्रथम आयाम रूप का चित्रण है। प्रेम के लिए सौन्दर्य आवश्यक है। जहां सौन्दर्य है वही आकर्षण है और यह आकर्षण ही सौन्दर्य का प्रतिवेशी है। सौन्दर्य आक्रामक होता है और जहां आक्रामकता है वही प्रेम का अध्याय खुलता हुआ परिलक्षित होता है। सौन्दर्य एक अनिर्वचनीय वस्तु है जो अनुभूतिगम्य है, विश्लेष्य नहीं। महाकवि गेटे ने सौन्दर्य के इसी अद्भुत रूप के विषय में लिखा भी है कि सौन्दर्य का स्वरूप निश्चित करना और समझाना सम्भव नहीं है, वह एक तरल भगुर और अमूर्त आभास-सा है जिसे परिभाषा की सीमा मे आबद्ध नही किया जा

1—कनुप्रिया, पृ० 71

सकता। इतना होते हुए भी विद्वज्जन चिरकाल के सौन्दर्य को एक निश्चित परिभाषा में समाविष्ट करने का प्रयास करते रहे हैं, जिसका परिणाम यह हुआ कि किसी ने उसके एक पक्ष को स्पष्ट किया तो किसी ने दूसरे पक्ष को। सौन्दर्य के पर्याय के रूप मे रूप, अभिराम, लावण्य, कान्ति, शोभा, मंजुल, सुषमा, अचिर, मनोहर, मनोज्ञ, मनोरम, चारु, सुन्दर आदि शब्दों का प्रचलन रहा है परन्तु सौन्दर्याभिव्यंजक गुणों की पूर्ण अभिव्यंजनात्मक सामर्थ्य किसी शब्द मे नहीं है। सभी सौन्दर्य के एक पक्ष विशेष को सस्पर्श कर पाये हैं। रूप, अभिराम आदि बाह्याकार की अपेक्षित सम्बद्धता से उत्पन्न सौन्दर्य के व्यंजक है। लावण्य या कान्ति रूप या वैभव में भासित कान्ति के ज्ञापक हैं। अद्‌भुत सौन्दर्य सुषमा का प्रतीक है। ये सभी शब्द सौन्दर्य तत्वों के अभिव्यंजक हैं

सौन्दर्य रूपाकार एवं बाह्य अवयव-अवयवी सम्बन्ध नियोजन से परे हैं। तत्सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण आत्मपरक-वस्तुपरक, आध्यात्मपरक सहाचर्य आदि दृष्टियो से नही हो पाता। सुन्दरता के मूल्यांकन मे व्यक्ति और वस्तु का समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही प्रमुख ठहरता है। वस्तुतः सौन्दर्य उभयपक्षी है जिसमें वस्तु और भावक दोनों पक्षों का सन्निवेश है। काव्यगत उपयोग के लिए विषय वस्तु एवं द्रष्टा में तादात्म्य होना आवश्यक है। कुछ सौन्दर्यवेत्ताओं ने सौन्दर्य को काव्य की संज्ञा से भी अभिहित किया है।

सौन्दर्य के भेद एवं तत्व

डा॰ हरद्वारीलाल ने सुन्दर वस्तुओं में भोग, रूप और अभिव्यक्ति नामक तीन तत्वों का उल्लेख किया है। वस्तु निर्माण में आकार को निर्मित करने वाले साधन रूपी पदार्थ को भोग कहा जाता है। दर्शक अपनी सौंदर्य चेतना के बल पर इसे अनुभूत करता है। भोग गोचर वस्तु विशेष के सौन्दर्यानुभव का सहज और स्वाभाविक ही है। ज्ञानेन्द्रियो के विषय ज्ञान मे भोग तत्व की प्रधानता है। इसे हम निम्नोधृत चार्ट की सहायता से समझ सकते हैं।

सौन्दर्य तत्व

भोग | रूप | कलात्मक

रंग गन्ध रस ध्वनि स्पर्श | समता संगति सन्तुलन | मूर्तिकला स्थापत्य काव्य चित्रकला

वस्तुगत (तटस्थ द्रष्टा की भांति) | रूपजन्य मानसिक आनन्द | वासना की अनुभूति (विस्मय, आनन्द, रति)
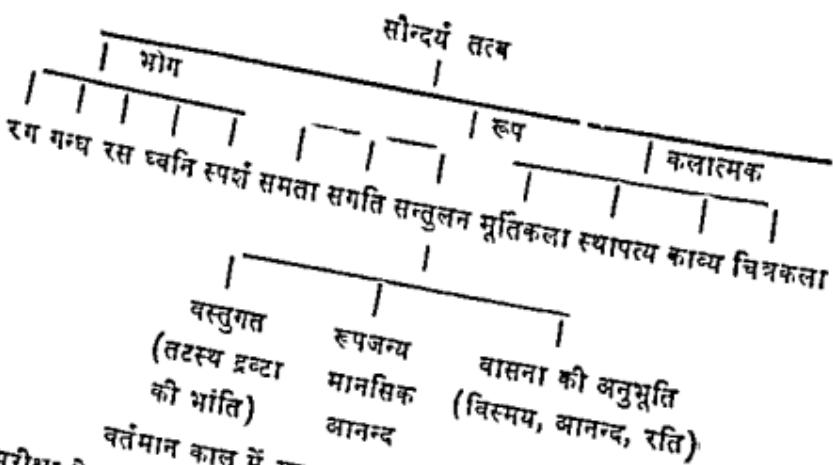
वर्तमान काल में सुन्दर-असुन्दर, शिव-अशिव एवं सत्य-असत्य की परीक्षा के प्रतिमान आत्मगत हो गये हैं। आज का सौन्दर्य बोध सामन्ती संस्कृति का प्रोद्भास न होकर सन्त्रास, अभाव, वैज्ञानिक दृष्टि और विचक्षणता से जन्मा है।

'कनुप्रिया' में सौन्दर्य चेतना का तत्व

आधुनिक सौन्दर्य चिन्तकों में डा० धर्मवीर भारती का प्रमुख स्थान है। उनकी सौन्दर्य चेतना में कुतूहल प्रवृत्ति एवं जिज्ञासा का अभाव है। 'कनुप्रिया' की राधा पूर्ववर्ती सन्दर्भों की स्मृति के परिवेश में स्वकीय जीवन मूल्यों को लिए खड़ी है और कृष्ण साहचर्य के एक-एक क्षण को स्मरण कर कृष्ण की जन्मजन्मान्तर की सखी होने के नाते आगतपतिका के रूप में प्रतीक्षारत बैठी रही है। वे निसखिओं तथा अभिसारों के तन्मयकारी क्षणों में कृष्ण ने उसके जिस रूप वैभव, लावण्य, मार्दव, गुण समुच्चय एवं क्रिया व्यापारों पर मंत्रमुग्ध हो उसे सराहा है वही मादक स्मृति तो उसे कनु के प्रति अत्यधिक उग्रता से संवेदनशील बना रही है। 'आम्रबौर का अर्थ' शीर्षक कविता का यह अंश प्रस्तुत सन्दर्भ में उल्लेख्य है—

"राधन् ! तुम्हारी शोख चंचल विचुम्बित पलकें
तो पगडंडियां मात्र हैं,
राधन् ! ये पतले मृणाल सी तुम्हारी गोरी अनावृत बाहें
तुम्हारे अधर, तुम्हारी पलकें, तुम्हारी बाहें, तुम्हारे
चरण, तुम्हारे अंग, प्रत्यंग, तुम्हारी सारी
चम्पकवर्णी देह मात्र पगडंडियां है जो

चरम साक्षात्कार के क्षणों में रहती नहीं
रीत-रीत जाती हूँ।"[1]

उपर्युक्त उल्लिखित उपमानों में सौन्दर्य की झलक मिलती है। पलकों का शोख और चंचल रूप तो सहज स्वीकार्य है पर 'विचुम्बित' शब्द राधा के मुक्तभोगी स्वरूप का व्यजक है।

'कनुप्रिया' का भाव जगत कोमल है। उसमे सौन्दर्य की मधुर नवोदित छवियो का हृदयाकर्षक चित्रण मिलता है। प्राकृतिक जगत की कोमलता से मिलकर कृति की मूल संवेदना सहज सौन्दर्य से और भी आकर्षक बन पड़ी है। 'कृष्ण का संकल्प' धरती मे सोंधापन व्याप्त है, जो जड़ों में रस बनकर खिंचता है कोपलों में फूटता नजर आता है, पत्तो मे हरियाता, फूलों में खिलता और फलों में गहरा जाता है।[2] इस तरह के और भी सौन्दर्यमय चित्र 'कनुप्रिया' में देखने को मिलते हैं। यहां प्रकृति का कोमल रूप यदि मन को बांधता है तो परुष रूप मस्तिष्क की शिराओं को झनझनाता हुआ मूर्तिमान होकर हमारे सामने उभरता है। प्रकृति में भी जो प्रलयकारी सौन्दर्य है उसकी महत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। अब न केवल मधुरता एव प्रफुल्लता में ही सौन्दर्य देखती हैं वरन् भीषणता में भी उसने सौन्दर्य तत्वों का साक्षात्कार किया है। कनुप्रिया मे राधा का कसाव निर्मम और उन्माद भरा है. उसकी बांहें नागवधु की गुंजलक की भांति कनु की देह को कसती जा रही है जिससे कनु की बांहें, होठों, कन्धों पर नागवधू की शुभ्र दन्त पंक्तियो के नीले-नीले चिन्ह उभर आये हैं। सौन्दर्य चेतना में इस भोगी प्रवृत्ति के उद्भव का एक अन्य कारण कवि की क्षण बोधी विचारधारा और मांसल सौन्दर्य के प्रति लगाव है।

मांसल सौन्दर्य का अंकन

भारती के सौन्दर्य चित्रों में उनकी सजग सौन्दर्य दृष्टि की झलक सर्वत्र दिखाई देती है। कहीं सौन्दर्य पर अमगल की छाया गिरने लगती है तो दूसरी और अशोक छायादार वृक्ष है जिसने न जाने कितने प्रसगों एव प्रतीक्षा के पलो का बोझ और प्रेम की गुपचुप वार्ता सुनी है। यहां पर बड़े-बड़े गुलाब स्तनो के प्रतीक हैं और चन्दन बसाव ऊष्मायुक्त

1- कनुप्रिया, पृ० 27
2- नयी कवित- नये धरातल, पृ० 198

आलिंगन का द्योतक है। सौन्दर्य के रूप-भोग एवं अभिव्यक्ति-तीनों त
की सूक्ष्म पैठ भारती के सौन्दर्य चित्रों में द्रष्टव्य है।

सौन्दर्यांकन में रंग बोध

(क) चम्पकवर्णी देह

(ख) पतले मृणाल-सी गोरी अनावृत बाहें

(ग) स्वर्णवर्णी जन्घायें

(घ) उतग हिमशिखर से गोरे कन्धे

ध्वन्यात्मकता

(क)
और तुम्हारे जादू भरे होंठों से
रजनीगन्धा के फूलों को
एक के बाद एक, एक के बाद एक।

स्पर्श एवं गन्ध बोध

(क) कांपते हुए गुलाबी जिस्म

(ख) शोख विचुम्बित पलकें

(ग)
अगर हिलोरें लेता महासागर
मेरे ही निरावृत्त जिस्म का
उतार चढ़ाव है।

(घ)
हां! चन्दन!
तुम्हारी बाहों में इन सबको रीतता पाया है।

(ङ) तुम्हारी उठी हुई चन्दन बाहें

रूपासक्ति

भारती की सौन्दर्य चेतना में रूपासक्ति का भी प्राबल्य है। 'ठण्डा लोहा' काव्य संकलन की पूर्ववर्ती कविताओं के अन्तर्गत भी उन्होंने कामना के विष को अमृत स्वीकारा है यदि यह प्रिया के रूप-सौन्दर्य से उद्भूत हो। 'कनुप्रिया' की राधा आद्यान्त ऐन्द्रिक सुखाकांक्षा से मुक्त नहीं हो पायी है। उसने जीवन के इसी रूप को सर्वोपरि संकलित किया है।

महाभारतकार कृष्ण अन्त में थक कर, हार कर उसके वक्ष के गहराव में चौड़ा माथा रखकर आत्मतोष अनुभूत करेंगे ऐसा उसका स्वप्न ही है।

अन्ततः यही कहा जा सकता है कि भारती की सौन्दर्य चेतना अत्यन्त आकर्षक एव परिष्कृत है। उन्होने सौन्दर्यानुभूति ही को काव्यानुभूति का आधार बनाया है। इसीलिए उनके सौन्दर्य चित्र मजे हुए, तराशे हुए तथा रग रूप भरे हुए से लगते हैं। राधा के अग-प्रत्यग चित्रण मे ही नही, अपितु कृष्ण के रूप सौन्दर्य चित्रण मे भी नव्यता मौलिकता एवं स्वाभाविकता है। काव्य में सर्वत्र ही उपमाओं का उतार–चढ़ाव कवि को सौन्दर्य-प्रियता का ही आभास देता है। इस विवेचन के आलोक में यदि उन्हें सौन्दर्य चेतना का कवि कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

निष्कर्ष

'कनुप्रिया' के वैचारिक परिप्रेक्ष्य का काव्य की सृजनात्मक प्रेरणाओ, युग चित्रण भावना, संघर्ष भावुकताजन्य तन्मयावस्था और विवेकपूर्ण तर्क दृष्टि, काम चेतना के स्वरूप, दार्शनिक अनुचिन्तन, मनोविश्लेषण, सौन्दर्य शास्त्रीय एवं कलावादी प्रतिमानों की दृष्टि से मूल्यांकन करने के पश्चात् हम निःसकोच 'कनुप्रिया' को उच्च वैचारिक स्तर की प्रबन्ध काव्य कृति कह सकते है। 'अधायुग' में भारती जी ने कुछ ज्वलन्त और विचारोत्तेजक प्रश्न सन्दर्भ उठाये थे; 'कनुप्रिया' तो समग्रतः प्रश्न–सन्दर्भो मे रचा गया काव्य है। कवि ने एक जागरूक युगद्रष्टा कलाकार की भांति अपने चिन्तन की समस्त धरोहर को समीक्ष्य काव्य मे निरूपित किया है। 'कनुप्रिया' की महत्ता इसलिए और भी अधिक है क्योंकि इसका शिल्प–वैधानिक स्तर जितना उच्च स्तरीय है उतना ही उत्कृष्ट और उदात्त इसका वैचारिक–परिप्रेक्ष्य भी है।

उपसंहार

अध्ययन के निष्कर्ष, उपलब्धियां और संभावनाएं

इस प्रकार हिन्दी नवलेखन की प्रमुख प्रबन्ध काव्यकृति 'कनुप्रिया' का सर्वांगीण अध्ययन करने के पश्चात् हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि कनुप्रिया न केवल धर्मवीर भारती के कृतित्व में उत्कृष्ट है अपितु संपूर्ण हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा की भी गौरवान्वित रचना है। राधा के चरित्र को लेकर पुराण-साहित्य संस्कृत के ललित साहित्य, हिन्दी आदि-काल, भक्ति काल, रीति काल और आधुनिक काल में प्रभूत काव्य सृष्टि हुई है। प्रत्येक युग के रचनाकार ने स्वयं की रचना-दृष्टि या परम्परागत मान्यताओं के परिसन्दर्भ में ही राधा के चरित्र को रुपायित किया है। 'कनुप्रिया' का रचनात्मक वैशिष्ट्य इस बात में निहित है कि उसमें निरूपित राधा का चरित्र परम्परा और आधुनिकता, कवि की अनुभूति और युग बोध, भावुक मन स्थिति से जन्मी तन्मयता और विवेक दृष्टि की समन्वित पृष्ठभूमि पर आधारित है। 'कनुप्रिया' रोमानी भाव बोध की काव्यकृति है जिसमें युग के बहुत से महत्वपूर्ण प्रश्नों को प्रासंगिक रूप में रचनाकार सहज ही रेखांकित कर गया है।

'कनुप्रिया' का सम्पूर्ण रचना-विधान यद्यपि एक प्रबन्ध काव्य कृति का है; फिर भी उसमें गीति काव्य और नाट्य विधा की शिल्पगत प्रवृत्तियां भी यत्र-तत्र परिलक्षित होती हैं। समीक्ष्य काव्य जितना महत्व-पूर्ण शैल्पिक प्रतिमानो की दृष्टि से है उतना ही गौरवास्पद जीवन-दर्शन की दृष्टि से भी है। 'कनुप्रिया' के कथ्य में कवि ने युग जीवन के इतने महत्वपूर्ण सन्दर्भ सग्रथित किये हैं कि यह विशिष्ट रचना होते हुए भी समष्टि चेतना का काव्य बन गया है।

इसी प्रकार इस काव्य के चरित्र-विधान में भी अनेकानेक नवीन उद्भावनाएं की गयी हैं। कवि ने राधा के चरित्र में काम चेतना का [illegible]

भरते समय मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किये हैं। जहां राधा का चरित्र दमित वासनाओं के विस्फोट से आक्रान्त दिखाई देता है वहीं उसमें उदात्त भावनाओं की भी कमी नहीं है। दूसरे शब्दों में कनुप्रिया काव्य की नायिका का चरित्र काम और आध्य रस की समन्वित भूमिका पर प्रतिष्ठित है। जहां तक शैल्पिक प्रतिमानों के विनियोजन का प्रश्न है कनुप्रिया की भाषात्मक-सरचना, शैली-विधान, प्रतीक-सृष्टि, बिम्बयोजना, वर्णन-कौशल और अन्य सभी रचना पक्षों में शिल्प की ताजगी है। धर्म वीर भारती की काव्य शैली में पाठक की सहज अभिभूति करने की विलक्षण सामर्थ्य है। इस तथ्य का परिचय कनुप्रिया के काव्यांशों में स्थान-स्थान पर मिलता है।

'कनुप्रिया' का वैचारिक-परिप्रेक्ष्य भी कम महत्वपूर्ण नही है। उसमें रचनाकार का परिपक्व चिन्तन और अनुभूत सत्य की प्रतिक्रियाए दोनों ही विद्यमान हैं। 'कनुप्रिया' के रचना-विस्तार में मूलतः नर-नारी के रागात्मक सम्बन्धो और तन्मयवस्था की प्रतिक्रियाओं को चित्रित किया गया है, फिर भी इसमें युद्ध से जन्मी अहिंसा, धर्म-अधर्म, सद् असद् विवेक-अविवेक जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न-सन्दर्भों को यथास्थान निरूपित किया है। सम्पूर्ण कृति प्रश्नाकुल मनः स्थितियों का सारगर्भित और तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। कवि ने 'अन्धा-युग' नाट्य काव्य में बहुत से प्रश्नों को महाभारत के रूपक में खोजने का प्रयास किया था। 'कनुप्रिया' में इन प्रश्नों को पुनः काव्य बोध के रूप में अंकित किया गया है।

समष्टि रूप से यह कहा जा सकता है कि 'कनुप्रिया' भावबोध और कलात्मक सौन्दर्य दोनों ही दृष्टियों से एक सफल काव्य सरचना है। इस कृति के रचना स्तरो को ज्यों-ज्यों विश्लेषित करते जायें त्यों-त्यों रचानात्मकता का सौन्दर्य प्रकट होता जाता है। ऐसी सफल प्रबन्ध काव्य कृति के सृजन के लिए धर्मवीर भारती निश्चय ही बधाई के पात्र हैं। राधा के चरित्र की मौलिक उद्भावनाओं की दृष्टि से भी उनका यह काव्य प्रयास अभिनन्दनीय हैं।